ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

नमो देव्यै जगद्धात्र्यै शिवायै सततं नमः। दुर्गायै भगवत्यै ते कामदायै नमो नमः॥
नमः शिवायै शान्त्यै ते विद्यायै मोक्षदे नमः। विश्वव्याप्त्यै जगन्मातर्जगद्धात्र्यै नमः शिवे॥

वर्ष ८२

गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०६४, श्रीकृष्ण-सं० ५२३३, जनवरी २००८ ई०

संख्या १

पूर्ण संख्या ९७४

देवताओंद्वारा किया गया देवीका स्तवन

नमो देवि विश्वेश्वरि प्राणनाथे सदानन्दरूपे सुरानन्ददे ते।
नमो दानवान्तप्रदे मानवानामनेकार्थदे भक्तिगम्यस्वरूपे॥
न ते नामसंख्यां न ते रूपमीदृक्तथा कोऽपि वेदादिदेवस्वरूपे।
त्वमेवासि सर्वेषु शक्तिस्वरूपा प्रजासृष्टिसंहारकाले सदैव॥
न वा ते गुणानामियत्तां स्वरूपं वयं देवि जानीमहे विश्ववन्द्ये।
कृपापात्रमित्येव मत्वा तथास्मान्भयेभ्यः सदा पाहि पातुं समर्थे॥

हे विश्वेश्वरि! हे प्राणोंकी स्वामिनि! सदा आनन्दरूपमें रहनेवाली तथा देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाली हे देवि! आपको नमस्कार है। दानवोंका अन्त करनेवाली, मनुष्योंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाली तथा भक्तिके द्वारा अपने रूपका दर्शन देनेवाली हे देवि! आपको नमस्कार है। हे आदिदेवस्वरूपिणि! आपके नामोंकी निश्चित संख्या तथा आपके इस रूपको कोई भी नहीं जान सकता। सबमें आप ही विराजमान हैं। जीवोंके सृजन और संहारकालमें शक्तिस्वरूपसे सदा आप ही कार्य करती हैं। हे देवि! हे विश्ववन्द्ये! हमलोग न आपके गुणोंकी सीमा जानते हैं और न आपका स्वरूप ही जानते हैं। अतः रक्षा करनेमें समर्थ हे देवि! हमें केवल अपना कृपापात्र मानकर आप भयोंसे निरन्तर हमारी रक्षा करती रहें। [**श्रीमद्देवीभागवत**]

॥ श्रीहरिः ॥

‘कल्याण’ के सम्मान्य सदस्यों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१-‘कल्याण’ के ८२वें वर्ष—सन् २००८ का यह विशेषाङ्क ‘श्रीमद्देवीभागवताङ्क’ आपलोगोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४७२ पृष्ठोंमें पाठ्य-सामग्री और ८ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि है। कई बहुरंगे एवं रेखाचित्र भी दिये गये हैं। डाकसे सभी ग्राहकोंको विशेषाङ्क-प्रेषणमें लगभग एक माहका समय लग जाता है।

२-वार्षिक सदस्यता-शुल्क प्रेषित करनेपर भी किसी कारणवश यदि विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा आपके पास पहुँच गया हो तो उसे डाकघरसे प्राप्त कर लेना चाहिये एवं प्रेषित की गयी राशिका पूरा विवरण (मनीऑर्डर पावतीसहित) यहाँ भेज देना चाहिये जिससे जाँचकर आपके सुविधानुसार राशिकी उचित व्यवस्था की जा सके। सम्भव हो तो उक्त वी०पी०पी० से किसी अन्य सज्जनको ग्राहक बनाकर उसकी सूचना यहाँ नये सदस्यके पूरे पतेसहित देनी चाहिये। ऐसा करके आप ‘कल्याण’ को आर्थिक हानिसे बचानेके साथ-साथ ‘कल्याण’ के पावन प्रचारमें सहयोगी भी हो सकेंगे।

३-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी सदस्य-संख्या एवं पता छपा है, उसे कृपया जाँच लें तथा अपनी सदस्य-संख्या सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री अथवा वी०पी०पी० का नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये। पत्र-व्यवहारमें सदस्य-संख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है; क्योंकि इसके बिना आपके पत्रपर हम समयसे कार्यवाही नहीं कर पाते हैं। डाकद्वारा अङ्कोंके सुरक्षित वितरणमें सही पता एवं पिन-कोड आवश्यक है। अतः अपने लिफाफेपर छपा अपना पता जाँच लेना चाहिये।

४-*‘कल्याण’* एवं *‘गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग’* की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः पत्र तथा मनीऑर्डर आदि सम्बन्धित विभागको अलग-अलग भेजना चाहिये।

‘कल्याण’ के उपलब्ध पुराने विशेषाङ्क

वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य(रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य(रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य(रु०)
६	श्रीकृष्णाङ्क	१२०	३०	सत्कथा-अङ्क	१००	५३	सूर्याङ्क	७०
७	ईश्वराङ्क	९०	३१	तीर्थाङ्क	१००	५६	वामनपुराण	८५
९	शक्ति-अङ्क	१२०	३४	सं० देवीभागवत (मोटा टाइप)	१५०	५९	श्रीमत्स्यमहापुराण	१५०
१०	योगाङ्क	१००	३५	सं० योगवासिष्ठ	१००	६६	सं० भविष्यपुराण	११०
१२	संत-अङ्क	१५०	३६	सं० शिवपुराण (बड़ा टाइप)	१३०	६९	गो-सेवा-अङ्क	७५
१५	साधनाङ्क	१२०	३७	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१२०	७१	कूर्मपुराण	८०
१९	सं० पद्मपुराण	१५०	३९	श्रीभगवन्नाम-महिमा और		७२	भगवल्लीला-अङ्क	६५
२०	गो-अङ्क	१२०		प्रार्थना-अङ्क	९०	७३	वेदकथाङ्क	८०
२१	सं० मार्कण्डेयपुराण	६०	४३	परलोक और पुनर्जन्माङ्क	१२०	७४	सं० गरुडपुराण	१००
२१	सं० ब्रह्मपुराण	७०	४४-४५	गर्गसंहिता [भगवान्		७५	आरोग्य-अङ्क (संवर्धित सं०)	१३०
२२	नारी-अङ्क	१४०		श्रीराधाकृष्णकी दिव्य		७६	नीतिसार-अङ्क	८०
२३	उपनिषद्-अङ्क	१२५		लीलाओंका वर्णन]	८०	७७	भगवत्प्रेम-अङ्क	
२४	हिन्दू-संस्कृति-अङ्क	१५०	४४-४५	अग्निपुराण (मूल संस्कृतका			(११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप)	१००
२५	सं० स्कन्दपुराणाङ्क	१८०		हिन्दी अनुवाद)	१३०	७८	व्रतपर्वोत्सव-अङ्क	१००
२६	भक्त-चरिताङ्क	१४०	४५	नरसिंहपुराण-सानुवाद	६०	७९	देवीपुराण [महाभागवत]	
२७	बालक-अङ्क	११०	४८	श्रीगणेश-अङ्क	९०		शक्तिपीठाङ्क	८०
२८	सं० नारदपुराण	१२०	४९	श्रीहनुमान-अङ्क	९०	८०	संस्कार-अङ्क	८५
२९	संतवाणी-अङ्क	११०	५१	सं० श्रीवराहपुराण	७५	८१	अवतार-कथाङ्क	९०

सभी अङ्कोंपर डाक-व्यय अतिरिक्त देय होगा। गीताप्रेस-पुस्तक-विक्री-विभागसे प्राप्य हैं।

व्यवस्थापक—**‘कल्याण’-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)**

॥ श्रीहरि: ॥

'श्रीमद्देवीभागवताङ्क' की विषय-सूची

मङ्गलाचरण

विषय	पृष्ठ-संख्या

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

माहात्म्य

प्रथम स्कन्ध

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

द्वितीय स्कन्ध

तृतीय स्कन्ध

चतुर्थ स्कन्ध

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

पंचम स्कन्ध

चित्र-सूची

(रंगीन-चित्र)

(रेखा-चित्र)

श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य

देवीभागवतं नाम पुराणं परमोत्तमम्। त्रैलोक्यजननी साक्षाद् गीयते यत्र शाश्वती॥
श्रीमद्भागवतं यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि। श्लोकार्धं श्लोकपादं वा स याति परमां गतिम्॥
पूजितं यद्गृहे नित्यं श्रीभागवतपुस्तकम्। तद्गृहं तीर्थभूतं हि वसतां पापनाशकम्॥
यस्तु भागवतं देव्याः पठेद् भक्त्या शृणोति वा। धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः॥
सुधां पिबन्नेक एव नरः स्यादजरामरः। देव्याः कथामृतं कुर्यात् कुलमेवाजरामरम्॥
अष्टादशपुराणानां मध्ये सर्वोत्तमं परम्। देवीभागवतं नाम धर्मकामार्थमोक्षदम्॥
ये शृण्वन्ति सदा भक्त्या देव्या भागवतीं कथाम्। तेषां सिद्धिर्न दूरस्था तस्मात् सेव्या सदा नृभिः॥
दिनमर्धं तदर्धं वा मुहूर्तं क्षणमेव वा। ये शृण्वन्ति नरा भक्त्या न तेषां दुर्गतिः क्वचित्॥
तावद् गर्जन्ति तीर्थानि पुराणानि व्रतानि च। यावन्न श्रूयते सम्यग् देवीभागवतं नरैः॥
तावत् पापाटवी नृणां क्लेशदादभ्रकण्टका। यावन्न परशुः प्राप्तो देवीभागवताभिधः॥
तावत् क्लेशावहं नृणामुपसर्गमहातमः। यावन्नैवोदयं प्राप्तो देवीभागवतोष्णगुः॥

इदमखिलकथानां सारभूतं पुराणं निखिलनिगमतुल्यं सप्रमाणानुविद्धम्।
पठति परमभावाद्यः शृणोतीह भक्त्या स भवति धनवान्वै ज्ञानवान्मानवोऽत्र॥

श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराण सभी पुराणोंमें अतिश्रेष्ठ है, जिसमें तीनों लोकोंकी जननी साक्षात् सनातनी भगवतीकी महिमा गायी गयी है। जो श्रीमद्देवीभागवतके आधे श्लोक या चौथाई श्लोकको भी प्रतिदिन सुनता या पढ़ता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। जिस घरमें नित्य श्रीमद्देवीभागवतग्रन्थका पूजन किया जाता है, वह घर तीर्थस्वरूप हो जाता है तथा उसमें निवास करनेवाले लोगोंके पापोंका नाश हो जाता है। जो व्यक्ति भक्ति-भावसे देवीके इस भागवतपुराणका पाठ अथवा श्रवण करता है; वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त कर लेता है। अमृतके पानसे तो केवल एक ही मनुष्य अजर-अमर होता है, किंतु भगवतीका कथारूप अमृत सम्पूर्ण कुलको ही अजर-अमर बना देता है। सभी अठारह पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवतपुराण सर्वश्रेष्ठ है और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको प्रदान करनेवाला है। जो लोग सदा भक्ति-श्रद्धापूर्वक श्रीमद्देवीभागवतकी कथा सुनते हैं, उन्हें सिद्धि प्राप्त होनेमें रंचमात्र भी विलम्ब नहीं होता, इसलिये मनुष्योंको इस पुराणका सदा पठन-श्रवण करना चाहिये। पूरे दिन, दिनके आधे समयतक, चौथाई समयतक, मुहूर्तभर अथवा एक क्षण भी जो लोग भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करते हैं, उनकी कभी भी दुर्गति नहीं होती। समस्त तीर्थ, पुराण और व्रत [अपनी श्रेष्ठताका वर्णन करते हुए] तभीतक गर्जना करते हैं, जबतक मनुष्य श्रीमद्देवीभागवतका सम्यक् रूपसे श्रवण नहीं कर लेते। मनुष्योंके लिये पापरूपी अरण्य तभीतक दुःखप्रद एवं कंटकमय रहता है, जबतक श्रीमद्देवीभागवतरूपी परशु (कुठार) उपलब्ध नहीं हो जाता। मनुष्योंको उपसर्ग (ग्रहण)-रूपी घोर अन्धकार तभीतक कष्ट पहुँचाता है, जबतक श्रीमद्देवीभागवतरूपी सूर्य उनके सम्मुख उदित नहीं हो जाता। इस संसारमें जो मनुष्य विशेष श्रद्धाके साथ उच्च विचारोंसे युक्त होकर सम्पूर्ण पुराणोंके सारस्वरूप, समस्त वेदोंकी तुलना करनेवाले तथा नानाविध प्रमाणोंसे परिपूर्ण इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणका पाठ करता है तथा इसका भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह ऐश्वर्य तथा ज्ञानसे सम्पन्न हो जाता है। [श्रीमद्देवीभागवत]

श्रीमद्देवीभागवतसुभाषितसुधा

येन केनाप्युपायेन कालातिवाहनं स्मृतम्।
व्यसनैरिह मूर्खाणां बुधानां शास्त्रचिन्तनैः॥

जिस किसी प्रकारसे समय तो बीतता ही रहता है, किंतु मूर्खोंका समय व्यर्थ दुर्व्यसनोंमें बीतता है और विद्वानोंका समय शास्त्रचिन्तनमें जाता है। (१।१।१२)

मूर्खेण सह संयोगो विषादपि सुदुर्जरः।
विज्ञेन सह संयोगः सुधारससमः स्मृतः॥

मूर्खके साथ स्थापित किया गया सम्पर्क विषसे भी अधिक अनिष्टकर होता है, इसके विपरीत विद्वानोंका सम्पर्क पीयूषरसके तुल्य माना गया है। (१।६।५)

न गृहं बन्धनागारं बन्धने न च कारणम्।
मनसा यो विनिर्मुक्तो गृहस्थोऽपि विमुच्यते॥

गृह बन्धनागार नहीं है और न बन्धनका कारण ही है। जो मनसे बन्धनमुक्त है, वह गृहस्थ-आश्रममें रहते हुए भी मुक्त हो जाता है। (१।१४।५५)

कामः क्रोधः प्रमादश्च शत्रवो विविधाः स्मृताः।
बन्धुः सन्तोष एवास्य नान्योऽस्ति भुवनत्रये॥

काम, क्रोध, प्रमाद आदि अनेक प्रकारके शत्रु बताये गये हैं; किंतु व्यक्तिका सच्चा बन्धु तो एकमात्र सन्तोष ही है; तीनों लोकोंमें दूसरा कोई भी नहीं है। (१।१७।४७)

भ्रमन्सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः।
निर्मलं न मनो यावत्तावत्सर्वं निरर्थकम्॥

सभी तीर्थोंमें घूमते हुए वहाँ बार-बार स्नान करके भी यदि मन निर्मल नहीं हुआ तो वह सब व्यर्थ हो जाता है। (१।१८।३८)

शत्रुर्मित्रमुदासीनो भेदाः सर्वे मनोगताः।
एकात्मत्वे कथं भेदः सम्भवेद् द्वैतदर्शनात्॥

शत्रुता, मित्रता या उदासीनताके सभी भेदभाव मनमें ही रहते हैं। एकात्मभाव होनेपर भेदभाव नहीं रहता; यह तो द्वैतभावसे ही उत्पन्न होता है। (१।१८।४१)

प्रयत्नश्चोद्यमे कार्यो यदा सिद्धिं न याति चेत्॥
तदा दैवं स्थितं चेति चित्तमालम्बयेद् बुधः।

प्रयत्नपूर्वक उद्यम तो करना ही चाहिये, यदि सफलता न मिले तो बुद्धिमान् मनुष्य मनमें विश्वास कर ले कि दैव यहाँ प्रबल है। (२।८।३९-४०)

धर्मेण हन्यते व्याधिर्येनायुः शाश्वतं भवेत्॥

धर्माचरणसे व्याधि नष्ट होती है और उससे आयु स्थिर होती है। (२।१०।३७)

मूर्खा यत्र सुगर्विष्ठा दानमानपरिग्रहैः।
तस्मिन्देशे न वस्तव्यं पण्डितेन कथञ्चन॥

जहाँ दान, मान तथा परिग्रहसे मूर्खलोग महान् गौरवशाली माने जाते हैं, उस देशमें पण्डितजनको किसी प्रकार भी नहीं रहना चाहिये। (३।१०।४१)

द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मन्त्रशुद्धिश्च भूमिप।
भवेद्यदि तदा पूर्णं फलं भवति नान्यथा॥

यदि द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मन्त्रशुद्धिके साथ कर्म सम्पन्न होता है, तब पूर्ण फलकी प्राप्ति अवश्य होती है; अन्यथा नहीं होती। (३।१२।७)

अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्।
न कीर्तिरिह लोके च परलोके न तत्फलम्॥

अन्यायके द्वारा उपार्जित किये गये धनसे यदि पुण्य कार्य किया जाता है तो इस लोकमें यशकी प्राप्ति नहीं होती और परलोकमें उसका कोई फल भी नहीं मिलता। (३।१२।८)

आर्तस्य रक्षणे पुण्यं यज्ञाधिकमुदाहृतम्।
भयत्रस्तस्य दीनस्य विशेषफलदं स्मृतम्॥

किसी दुःखी प्राणीकी रक्षा करनेमें यज्ञ करनेसे भी अधिक पुण्य बताया गया है। भयभीत तथा दीनकी रक्षाको तो और भी अधिक फलदायक कहा गया है। (३।१५।५७)

वृथा तीर्थं वृथा दानं वृथाध्ययनमेव च।
लोभमोहावृतानां वै कृतं तदकृतं भवेत्॥

लोभ तथा मोहसे घिरे हुए लोगोंका तीर्थ, दान, अध्ययन—सब व्यर्थ हो जाता है; उनका किया हुआ वह सारा कर्म न करनेके समान हो जाता है। (३।१६।५५)

धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्।

धर्मकी जय होती है, अधर्मकी नहीं। सत्यकी जय होती है, असत्यकी नहीं। (३।१९।५९)

स्वकर्मफलयोगेन प्राप्य दुःखमचेतनः।
निमित्तकारणे वैरं करोत्यल्पमतिः किल॥

अपने द्वारा उपार्जित कर्मफल भोगनेमें दुःख प्राप्त होनेके कारण अज्ञानी तथा अल्पबुद्धिवाला प्राणी निमित्त कारणके प्रति शत्रुता करने लगता है। (३।२०।४४)
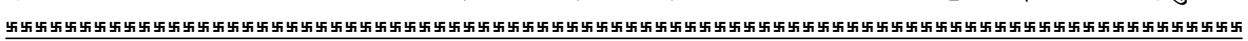
दुःखे दुःखाधिकान्पश्येत्सुखे पश्येत्सुखाधिकम्।
आत्मानं शोकहर्षाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत्॥

मनुष्यको चाहिये कि दुःखकी स्थितिमें अधिक दुःखवालोंको तथा सुखकी स्थितिमें अधिक सुख-वालोंको देखे; अपने आपको हर्ष-शोकरूपी शत्रुओंके अधीन न करे। (३।२५।७)

यथेन्द्रवारुणं पक्वं मिष्टं नैवोपजायते।
भावदुष्टस्तथा तीर्थे कोटिस्नातो न शुध्यति॥

जिस प्रकार इन्द्रवारुणका फल पक जानेपर भी मीठा नहीं होता, उसी प्रकार दूषित भावनाओंवाला मनुष्य तीर्थमें करोड़ों बार स्नान करके भी पवित्र नहीं हो पाता।(४।८।३६)

प्रथमं मनसः शुद्धिः कर्तव्या शुभमिच्छता।
शुद्धे मनसि द्रव्यस्य शुद्धिर्भवति नान्यथा॥

कल्याणकी कामना करनेवाले पुरुषको सर्वप्रथम अपने मनको शुद्ध कर लेना चाहिये। मनके शुद्ध हो जानेपर द्रव्यशुद्धि स्वतः हो जाती है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। (४।८।३७)

कार्यमित्रं परिक्षिप्य धर्ममित्रं समाश्रयेत्।

अपना ही कार्य साधनेमें तत्पर रहनेवाले मित्रका त्यागकर धर्ममार्गपर चलनेवाले मित्रका ही अवलम्बन करना चाहिये। (५।२६।१५)

परोपतापनं कर्म न कर्तव्यं कदाचन।
न सुखं विन्दते प्राणी परपीडापरायणः॥

दूसरेको कष्ट पहुँचानेका कृत्य कभी नहीं करना चाहिये, दूसरेको कष्ट देनेमें संलग्न प्राणी कभी सुख नहीं पाता। (६।३।२३)

विश्वासघातकर्तारो नरकं यान्ति निश्चयम्॥
निष्कृतिर्ब्रह्महन्तॄणां सुरापानां च निष्कृतिः॥
विश्वासघातिनां नैव मित्रद्रोहकृतामपि।

विश्वासघात करनेवाले निश्चय ही नरकमें जाते हैं। ब्राह्मणकी हत्या करनेवालों और मद्यपान करनेवालोंके लिये तो प्रायश्चित्त है, परंतु विश्वासघातियों और मित्रद्रोहियोंके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है। (६।६।३०—३२)

मन्त्रकृद् बुद्धिदाता च प्रेरकः पापकारिणाम्।
पापभाक्स भवेन्नूनं पक्षकर्ता तथैव च॥

पाप करनेका परामर्श देनेवाला, पाप करनेके लिये बुद्धि देनेवाला, पापकी प्रेरणा देनेवाला तथा पाप करनेवालोंका पक्ष लेनेवाला भी निश्चय ही पापकर्ताके समान पापभाजन होता है। (६।७।६)

परोपदेशे कुशला प्रभवन्ति नराः किल।
कर्ता चैवोपदेष्टा च दुर्लभः पुरुषो भवेत्॥

लोग दूसरोंको उपदेश देनेमें बहुत कुशल होते हैं, परंतु उपदेश देनेवाला और उसका पालन करनेवाला पुरुष दुर्लभ होता है। (६।८।१३)

यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमाप्नुयात्।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥

जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा फल प्राप्त होता है। किये गये शुभ-अशुभ कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। (६।९।६७)

कामक्रोधौ तथा लोभो ह्यहङ्कारो मदस्तथा॥
सर्वविघ्नकरा ह्येते तपस्तीर्थव्रतेषु च।

काम, क्रोध, लोभ, अहंकार तथा मद—ये सभी तपस्या, तीर्थसेवन और व्रतोंमें विघ्नकारी होते हैं। (६।१२।२०-२१)

लोभात्त्यजन्ति धर्मं वै कुलधर्मं तथैव हि।
मातरं भ्रातरं हन्ति पितरं बान्धवं तथा॥
गुरुं मित्रं तथा भार्यां पुत्रं च भगिनीं तथा।
लोभाविष्टो न किं कुर्यादकृत्यं पापमोहितः॥

लोभके वशीभूत प्राणी अपने सदाचार तथा कुलधर्मका भी परित्याग कर देते हैं। वे अपने माता, पिता, भाई, बान्धव, गुरु, मित्र, पत्नी, पुत्र तथा बहनतकका वध कर देते हैं। इस प्रकार लोभके वशीभूत मनुष्य पापसे विमोहित होकर कौन-सा दुष्कर्म नहीं कर डालता! (६।१६।४८-४९)

नैकत्र सुखसंयोगो दुःखयोगस्तु नैकतः।
घटिकायन्त्रवत्कामं भ्रमणं सुखदुःखयोः॥

न तो अकेले सुखका संयोग होता है और न तो दुःखका; घटीयन्त्रकी भाँति सुख तथा दुःखका भ्रमण होता रहता है। (६।३०।२३)

दुर्लभो मानुषो देहः प्राणिनां क्षणभङ्गुरः।
तस्मिन्प्राप्ते तु कर्तव्यं सर्वथैवात्मसाधनम्॥

क्षणभरमें नष्ट हो जानेवाला यह मानवशरीर प्राणियोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। इसके प्राप्त होनेपर सम्यक् प्रकारसे आत्मकल्याण कर लेना चाहिये। (६।३०।२५)

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण (पूर्वार्ध)—सिंहावलोकन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीनर-नारायण और भगवती सरस्वती तथा व्यासदेवको नमन करके पुराणकी चर्चा करनी चाहिये।

पुराणोंमें श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणका अत्यन्त महिमामय स्थान है। पुराणोंकी परिगणनामें वेदतुल्य, पवित्र और सभी लक्षणोंसे युक्त यह पुराण पाँचवाँ है। शक्तिके उपासक इस पुराणको 'शाक्तभागवत' कहते हैं। इस ग्रन्थरत्नके आदि-मध्य और अन्तमें—सर्वत्र भगवती आद्याशक्तिकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। इस पुराणमें परब्रह्म परमात्माके मातृरूप और उसकी उपासनाका वर्णन है। भगवती आद्याशक्तिकी लीलाएँ अनन्त हैं, उन लीलाकथाओंका प्रतिपादन ही ग्रन्थका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है, जिनके सम्यक् अवगाहनसे साधकों—भक्तोंका मन देवीके पदपद्मपरागका भ्रमर बनकर मुक्तिमार्गका पथिक बन जाता है।

श्रीवेदव्यासजीने राजा जनमेजयको यह पुराण स्वयं सुनाया था। पूर्वकालमें जनमेजयके पिता राजा परीक्षित् तक्षकनागद्वारा काट लिये गये। अतः पिताकी संशुद्धि (शुभ गति)-के लिये राजाने तीनों लोकोंकी जननी भगवती देवीका विधिवत् पूजन-अर्चन करके नौ दिनोंतक व्यासजीके मुखारविन्दसे इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणका श्रवण किया। इस नवाहयज्ञके पूर्ण हो जानेपर राजा परीक्षित्‌ने उसी समय दिव्य रूप धारण करके देवीका सालोक्य प्राप्त किया। राजा जनमेजय अपने पिताकी दिव्य गति देखकर और महर्षि वेदव्यासकी विधिवत् पूजा करके परम प्रसन्न हुए।

माहात्म्य—अठारह पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवतपुराण सर्वश्रेष्ठ है तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्रदान करनेवाला है। इस पावन पुराणकी महिमा कहाँतक कही जाय—जो फल कठिन तपस्याओं, व्रतों, तीर्थसेवन, अनेकविध दान, नियमों, यज्ञों, हवन एवं जप आदिके करनेसे नहीं प्राप्त होता है, वह फल मनुष्योंको श्रीमद्देवीभागवतके नवाहयज्ञसे प्राप्त हो जाता है।

यद्यपि इस पुराणके कथाश्रवणमें महीनों तथा दिनोंका कोई नियम नहीं है, अतएव मनुष्योंद्वारा इसका सदा ही पठन-श्रवण किया जाना चाहिये। वैसे आश्विन, चैत्र, माघ तथा आषाढ़—इन महीनोंके चारों नवरात्रोंमें इस पुराणके श्रवणका विशेष फल बताया गया है। जिस घरमें नित्य श्रीमद्देवीभागवतपुराणका पूजन किया जाता है, वह घर तीर्थस्वरूप हो जाता है तथा उसमें निवास करनेवाले लोगोंके पापका नाश हो जाता है।

इस श्रीमद्देवीभागवत नामक परम पावन पुराणका प्राकट्य भगवती श्रीजगदम्बिकाके श्रीमुखसे आधे श्लोकके रूपमें हुआ। तत्पश्चात् शिष्य-परम्परासे उसीका विस्तार हुआ। इस पुराणमें अठारह हजार श्लोक हैं। श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासने बारह स्कन्धोंमें इसकी रचना की है। पूरे पुराणमें कुल ३१८ अध्याय हैं।

एक बार नैमिषारण्यमें शौनक आदि महर्षियोंने मुनिवर सूतजीसे स्वर्ग तथा मोक्षका सुख प्रदान करनेवाले और भगवतीकी उत्तम महिमाका वर्णन करनेवाले इस पुराणको सुननेकी इच्छा प्रकट की। इसपर श्रीसूतजीने आद्याशक्ति महामाया जगज्जननी भगवती जगदम्बिकाका ध्यान करके इस पुराणकी पावन कथाका कहना प्रारम्भ किया।

सर्वप्रथम पाँच अध्यायोंमें श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यका वर्णन करते हुए स्यमन्तकमणिकी कथा, राजा सुद्युम्नकी कथा तथा राजा दुर्दमको भगवती जगदम्बाकी कृपासे मन्वन्तराधिप-पुत्रकी प्राप्तिकी कथा सूतजीने ऋषियोंको श्रवण करायी।

माहात्म्यवर्णनके अनन्तर ऋषियोंके आग्रह करनेपर सूतजीने श्रीमद्देवीभागवतपुराणकी श्रवणविधि, श्रवणकर्ताके लिये पालनीय नियम तथा कथाश्रवणके फल आदिका वर्णन किया।

इस श्रीमद्देवीभागवतको सुननेके प्रायः सभी अधिकारी हैं। शक्ति-उपासकके अतिरिक्त गणेशभक्त, सूर्योपासक, शैव, वैष्णव, इसके साथ ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चारों वर्णोंके स्त्री-पुरुष एवं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी—ये सभी सकाम भावसे अथवा निष्कामभावसे कथाश्रवण कर सकते हैं।

जो लोग ब्रह्मा-विष्णु और शिवमें भेददृष्टि रखते हैं, देवीकी भक्तिसे रहित हैं; पाखण्डी, हिंसक तथा दुष्ट हैं, विद्वानोंसे द्वेष रखनेवाले तथा नास्तिक हैं, परस्त्री, पराया धन, ब्राह्मणधन तथा देवसम्पत्तिके हरणमें लुब्ध रहते हैं—वे कथाश्रवणके अधिकारी नहीं हैं। श्रोताको चाहिये कि वह ब्रह्मचर्यका पालन करे, पृथ्वीपर सोये, सत्य बोले, जितेन्द्रिय रहे तथा

कथाकी समाप्तितक संयमपूर्वक पत्तलपर भोजन करे। वह देवभक्त, उदार, लोभरहित और हिंसा आदिसे रहित हो तथा काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, राग-द्वेष, पाखण्ड और अहंकारको भी छोड़ दे। कथाव्रतीको सर्वदा विनयशील, सरलचित्त, पवित्र, दयालु, कम बोलनेवाला तथा उदार मनवाला होना चाहिये।

कथावाचकके लिये संयमी, शास्त्रज्ञ, देवीकी आराधनामें तत्पर, दयालु, निर्लोभी, दक्ष, धैर्यशाली तथा वक्तृत्वसम्पन्न होना उत्तम माना गया है। व्यासके आसनपर बैठा हुआ पौराणिक ब्राह्मण जबतक कथा समाप्त न हो जाय, तबतक किसीको भी प्रणाम न करे।

जिस प्रकार नदियोंमें गंगा, देवताओंमें शिव, काव्योंमें वाल्मीकीय रामायण, तेजस्वियोंमें भगवान् सूर्य, आनन्द देनेवालोंमें चन्द्रमा, सब धनोंमें सुयश, क्षमाशीलोंमें पृथ्वी, गम्भीरतामें समुद्र, मन्त्रोंमें गायत्री तथा पापनाशके उपायोंमें भगवत्स्मरण श्रेष्ठ है; उसी प्रकार अठारहों पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवतपुराण सर्वश्रेष्ठ है।

गायत्रीसे बढ़कर न कोई धर्म है, न तप है, न कोई देवता है और न कोई मन्त्र ही है। भगवती अपना गुणगान करनेवालेकी रक्षा करती हैं। इसी कारण इन्हें गायत्री कहा जाता है। वे भगवती गायत्री इस पुराणमें अपने रहस्योंसहित विराजती हैं। इस कारणसे इस महापुराणके सदृश दूसरा कोई उत्तम पुराण इस लोकमें नहीं है।

अमृतसागरके तटपर कल्पवृक्षकी वाटिकासे सुशोभित, मणिद्वीपमें स्थित, बहुवर्णचित्रित चिन्तामणिमय भवनमें तथा परमशिवके हृदयमें विराजमान रहनेवाली और मन्द-मन्द मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाली जगदम्बाका ध्यान करनेसे मनुष्य सांसारिक सुखोंका उपभोग करता है और अन्तमें निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करता है।

प्रथम स्कन्ध

नारदजीका व्यासजीको देवीकी महिमा बताना— प्राचीन कालमें एक समय व्यासजीने गौरैया-दम्पतीको अपने दो नवजात शिशुओंको स्नेह करते देखा। यह देखकर व्यासजीके मनमें पुत्र-प्राप्तिकी इच्छा हो आयी, साथ ही उन्होंने यह भी सोचा कि पुत्ररहित मनुष्यकी सद्गति नहीं होती, परंतु गृहस्थाश्रम चलानेके लिये पत्नी और धनकी आवश्यकता होती है, जो मेरे पास नहीं हैं। इस प्रकार चिन्तन करते हुए व्यासजीका मन अत्यन्त खिन्न हो गया, अन्ततः उन्होंने तपस्या करनेके लिये मेरुपर्वतपर जानेका निश्चय किया। तदनन्तर उन्होंने मनमें विचार किया कि मैं किस देवताकी आराधना करूँ, जिससे मेरे अभीष्टकी सिद्धि हो? संयोगवश उसी समय नारदजी वहाँ आ गये। कुशल-प्रश्नके बाद नारदजीने व्यासजीसे पूछा—हे द्वैपायन! आप किस कारणसे चिन्ताग्रस्त हैं? मुझे बतायें।
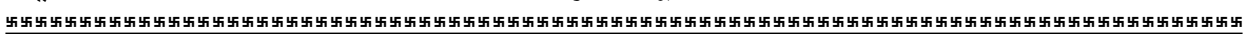
व्यासजीने कहा—हे महर्षे! सन्तानहीनकी सद्गति नहीं होती, अतः आप मुझे यह बतायें कि पुत्र-प्राप्तिके लिये मैं किस देवताका आराधन करूँ? इस प्रश्नके उत्तरमें नारदजीने व्यासजीसे एक प्राचीन वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि एक बार मेरे पिता ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुको ध्यानमें स्थित होकर कठोर तप करते देखा, उन्हें तपस्या करते देखकर ब्रह्माजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने भगवान् विष्णुसे पूछा—हे देवाधिदेव! हे जगन्नाथ! हे भूत-भविष्य-वर्तमानके स्वामी! आप किसलिये यह कठोर तपस्या कर रहे हैं? हे जनार्दन! आप किसके ध्यानमें लीन हैं? हे जगन्नाथ! मैं तो यही जानता हूँ कि आप ही आदिस्वरूप, सबके कारण, निर्माता, पालनकर्ता, संहारक तथा सभी कार्योंको सम्पादित करनेवाले हैं? भगवान् शंकरसहित मैं और अन्य सभी देवता आपके आदेशसे अपने-अपने दायित्वोंका निर्वहन करते हैं। मैं तो तीनों लोकोंमें आपसे बढ़कर अन्य किसी देवताको नहीं जानता हूँ, फिर आप किस देवताका ध्यान कर रहे हैं?

ब्रह्माजीका वचन सुनकर भगवान् विष्णुने उनसे कहा—हे ब्रह्मन्! किसी शक्तिके द्वारा ही आप सृष्टिके कर्ता हैं, मैं भर्ता हूँ और शंकरजी हर्ता हैं। उस शक्तिके न रहनेपर आप न तो सृष्टि-रचना कर सकते हैं, न मैं पालन-कार्य कर सकनेमें समर्थ हो सकता हूँ और न तो शंकरजी संहार कर सकते हैं। उसी शक्तिका अवलम्बन प्राप्तकर मैं सदा तपश्चरण करता रहता हूँ। हे विभो! हम सभी निरन्तर उसी शक्तिके अधीन रहते हैं। तिर्यग्योनिमें उत्पन्न होना किसीके लिये भी प्रिय नहीं होता। मैं अपनी इच्छासे वामन, वाराह आदि योनियोंमें उत्पन्न नहीं होता हूँ, अपितु इसमें उसी शक्तिकी प्रेरणा ही परम कारण है। भला, मैं स्वतन्त्र होता तो मेरा सिर क्यों कटता और घोड़ेका सिरवाला 'हयग्रीव-अवतार' मैं क्यों लेता? अतएव मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, अपितु सर्वथा उसी शक्तिके अधीन हूँ और निरन्तर उसी शक्तिका ध्यान करता रहता हूँ।

इस प्रकार नारदजीने व्यासजीसे देवीकी सर्वोत्तमताका प्रतिपादन करनेवाला आख्यान सुनाकर उन्हें पुत्र-प्राप्तिके

लिये भगवतीके चरणारविन्दका ध्यान करनेका परामर्श दिया।

व्यासजीकी तपस्या और पुत्र-प्राप्ति—नारदजीका उपदेश सुनकर व्यासजी मेरुपर्वतपर तपस्या करने लगे। वे वाग्बीज मन्त्रका जप करते हुए सौ वर्षोंतक भगवान् शंकर और भगवती सदाशिवाकी आराधनामें तत्पर रहे। उनकी इस उग्र तपस्यासे इन्द्र भयभीत हो गये। उन्होंने भगवान् शंकरसे व्यासजीकी तपस्याका कारण पूछा। इसपर भगवान् शंकरने इन्द्रसे कहा कि व्यासजी पुत्र-प्राप्तिके लिये तपस्या कर रहे हैं, मैं इन्हें कल्याणकारी पुत्र प्रदान करूँगा। इन्द्रसे ऐसा कहकर भगवान् शंकर व्यासजीके पास गये और उन्हें पुत्र-प्राप्तिका वरदान दिया।

इसके अनन्तर व्यासजी अपने आश्रममें आकर अग्नि प्रकट करनेकी दृष्टिसे अरणि-मन्थन करने लगे। अरणीसे प्रकटित अग्निको देखकर व्यासजीके मनमें पुत्रोत्पत्तिका भाव आया, परंतु वे विचार करने लगे कि मुझे पत्नी तो है नहीं तथा स्त्री तो सदा बन्धनकी कारण ही बनी रहती है, इसलिये गृहस्थ होनेकी मुझमें प्रवृत्ति भी नहीं है।

उसी समय उन्हें घृताची नामक एक अप्सरा दृष्टिगोचर हुई, उसे देखकर मुनिके हृदयमें कामभावका संचार हो गया और एकाएक उनका तेज उस अरणीपर गिर गया। घृताची अप्सरा शापके भयसे भयभीत होकर शुकीका रूप धारणकर उड़ गयी। उस अरणीसे ही भगवान् शिवके वरदानस्वरूप परम तेजस्वी शुकदेवजीका जन्म हुआ। उत्पन्न होते ही तेजस्वी शुकदेवजी बड़े हो गये। व्यासजीने उनके उपनयनतकके सभी संस्कार कर दिये, उसी समय आकाशसे दिव्य मृगचर्म, कमण्डलु तथा दण्ड पृथ्वीपर आ गिरे और उन्हें लेकर शुकदेवजी गुरु बृहस्पतिके पास विद्याध्ययनके लिये चले गये।

श्रीवेदव्यासजी तथा शुकदेवजीका संवाद—विद्याध्ययन सम्पन्नकर शुकदेवजी अपने पिता व्यासजीके पास आ गये। उन्हें देखकर व्यासजी अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा विवाह करनेका प्रस्ताव रखा और कहा कि गृहस्थ-आश्रममें रहकर देवताओं और पितरोंका यजन करो, परंतु विरक्त शुकदेवजीने इसे स्वीकार न करते हुए कहा कि पिताजी! पुत्र-कलत्रके बन्धनमें फँसा हुआ प्राणी कभी भी बन्धनमुक्त नहीं हो पाता। इस संसारमें आत्मज्ञानको छोड़कर कौन-सा सुख है? दुर्लभ मानव-शरीरको पाकर तथा वेद-शास्त्रोंका अध्ययन करके भी यदि मनुष्य इस संसारमें बँधता है तो दूसरा भला कौन बन्धनमुक्त हो सकता है? विद्या तो वही है, जो शीघ्र ही भवबन्धनसे मुक्त कर दे।

व्यासजीने शुकदेवजीको समझानेका बहुत प्रयास किया और कहा कि जो मनसे बन्धनमुक्त है तथा जो न्यायमार्गसे धनोपार्जन करता है, शास्त्रोक्त कर्मोंका विधिवत् सम्पादन करता है, पितृश्राद्ध आदि यज्ञ करता है, सर्वदा सत्य बोलता है तथा पवित्र रहता है; वह गृहमें रहते हुए भी मुक्त हो जाता है, किंतु व्यासजीकी इन बातोंसे श्रीशुकदेवजी प्रभावित नहीं हुए और उन्होंने कहा—हे पवित्रात्मन्! इस कर्मभूमिमें मनुष्यजन्म अति दुर्लभ है। आप मुझे ऐसा ज्ञान दीजिये, जिससे मैं गर्भवासजनित महान् भयसे मुक्त हो जाऊँ।

शुकदेवजीकी यह प्रवृत्ति देखकर व्यासजीने कहा—हे पुत्र! मेरेद्वारा रचित श्रीमद्देवीभागवतपुराणको तुम पढ़ो, जिसे सुननेमात्रसे सत् और असत् वस्तुओंका यथार्थ ज्ञान हो जाता है। सर्वप्रथम आधे श्लोकमें इस पुराणका ज्ञान भगवती पराशक्तिने भगवान् विष्णुको देते हुए कहा—'यह सारा जगत् मैं ही हूँ, मेरे सिवा दूसरी कोई अविनाशी वस्तु है ही नहीं।' भगवान् विष्णुसे यह ज्ञान ब्रह्माजीको मिला और ब्रह्माजीने इसे नारदजीको बताया तथा नारदजीसे यह मुझे प्राप्त हुआ, फिर मैंने इसकी बारह स्कन्धोंमें व्याख्या की। व्यासजीके कहनेपर शुकदेवजीने श्रीमद्देवीभागवतपुराणका अध्ययन तो किया, परंतु उन्हें शान्ति नहीं मिल सकी।

जनकजीका शुकदेवजीको ज्ञानोपदेश देना—शुकदेवजीको चिन्तित देखकर व्यासजीने कहा कि पुत्र! यदि मेरे उपदेशसे तुम्हें शान्ति नहीं मिलती तो राजा जनकके पास मिथिलापुरी चले जाओ; वे राजर्षि जीवन्मुक्त, ब्रह्मज्ञानका चिन्तन करनेवाले, शान्तचित्त एवं पवित्र आत्मा हैं। वे जलमें कमलपत्रकी भाँति संसारमें रहते हैं, घरमें रहकर भी मुक्त हैं। व्यासजीका वचन सुनकर शुकदेवजी मिथिलापुरी जानेके लिये उत्सुक हो गये। पिताको प्रणामकर तथा उनकी प्रदक्षिणा करके शुकदेवजी दो वर्षोंमें मेरुपर्वत और एक वर्षमें हिमालयको पार करके मिथिलापुरी पहुँच गये। वहाँकी ऐश्वर्यसम्पदाको उन्होंने देखा। यद्यपि द्वारपालने पहले उन्हें रोका, परंतु उनकी वार्तासे प्रभावित होकर उसने शुकदेवजीको एक अत्यन्त रमणीय कक्षमें प्रवेश कराया। शुकदेवजीके आनेका समाचार सुनकर महाराज जनकने उनका स्वागत-सत्कारकर आगमनका प्रयोजन पूछा। शुकदेवजीने कहा—संशययुक्त चित्तवाला समझकर मेरे पिताजीने मुझे आपके पास भेजा है। हे राजेन्द्र! मैं मोक्षका अभिलाषी हूँ। तप, तीर्थ, व्रत, यज्ञ, स्वाध्याय और ज्ञान—
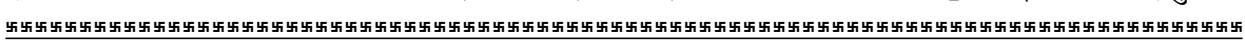
इनमेंसे जो मोक्षका साक्षात् साधन हो, वह मुझे बताइये।

जनकजी बोले—मोक्षमार्गावलम्बी व्यक्तिको यह उचित है कि वह अध्ययन समाप्त करनेके बाद विवाह करके पत्नीके साथ गृहस्थाश्रममें रहते हुए न्यायोपार्जित धनसे सर्वदा सन्तुष्ट रहकर किसीसे कोई आशा न रखे, पापोंसे बचते हुए सत्य वचन बोले और मन, वचन, कर्मसे सदा पवित्र रहे।

शुकदेवजीसे यह पूछनेपर कि चित्तमें वैराग्य और ज्ञान-विज्ञान उत्पन्न हो जानेपर व्यक्तिको गृहस्थाश्रममें रहना चाहिये अथवा वनोंमें, इसपर जनकजीने कहा—हे मानद! इन्द्रियाँ बड़ी बलवान् होती हैं, वे वशमें नहीं रहतीं; वे अपरिपक्व बुद्धिवाले मनुष्यके मनमें नाना प्रकारके विकार उत्पन्न कर देती हैं। यदि मनुष्यके मनमें भोजनकी, शयनकी, सुखकी और पुत्रकी इच्छा बनी रहे तो वह संन्यासी होकर भी इन विकारोंसे मुक्त नहीं हो सकता। वासनाओंका जाल बड़ा ही कठिन होता है, इसलिये उसकी शान्तिके लिये मनुष्यको क्रमसे उसका त्याग करना चाहिये।

गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी जो शान्त, बुद्धिमान् तथा आत्मज्ञानी होता है; वह न तो प्रसन्न होता है और न खेद करता है; वह हानि-लाभमें समानभाव रखता है। जो पुरुष शास्त्रप्रतिपादित कर्म करता हुआ; सभी प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्त रहता हुआ आत्मचिन्तनसे सन्तुष्ट रहता है, वह निःसन्देह मुक्त हो जाता है।

हे अनघ! देखिये, मैं राजकार्य करता हुआ भी जीवन्मुक्त हूँ। मैं अपनी इच्छानुसार सभी कार्य करता हूँ, किंतु मुझे शोक या हर्ष कुछ भी नहीं होता। जिस प्रकार मैं अनेक भोगोंको भोगता हुआ तथा अनेक कार्योंको करता हुआ भी अनासक्त हूँ, उसी प्रकार आप भी मुक्त हो जाइये।

हे द्विज! मन ही महान् सुख-दुःखका कारण है। इसीके निर्मल होनेपर सब कुछ निर्मल हो जाता है, विषयी मन बन्धन और निर्विषयी मन मुक्तिका प्रदाता है। यह देह मेरी है—यही बन्धन है और यह देह मेरी नहीं है—यही मुक्ति है। बन्धन शरीर और घरमें नहीं है, अपितु अहंता और ममतामें है।

शुकदेवजीका गृहस्थाश्रममें प्रवेश—जनकजीके उपदेशसे शुकदेवजीकी सारी शंकाएँ समाप्त हो गयीं। वे पिताके आश्रममें लौट आये। फिर उन्होंने पितरोंकी सुन्दर कन्या पीवरीसे विवाह करके गृहस्थाश्रमके नियमोंका पालन किया। उन्हें चार पुत्र और एक कन्या हुई, जिनका उन्होंने विवाह आदि भी सम्पन्न किया। तदनन्तर कुछ समय बाद शुकदेवजी सब कुछ त्यागकर कैलासके सुरम्य शिखरपर चले गये और निःसंग भावसे अविचल ध्यान लगाकर उन्होंने मुक्तिपदको प्राप्त किया।*

इधर पुत्रवियोगसे व्यासजी अत्यन्त दुःखी हुए। शोकसन्तप्त व्यासजीको अपनी माता सत्यवतीका ध्यान आया। वे अपने जन्मस्थानपर गये। वहाँ उन्हें माँ सत्यवतीका समाचार निषादराजसे मालूम हुआ। कालान्तरमें चित्रांगद और विचित्रवीर्यकी मृत्युके बाद कुरुवंशकी बेल समाप्त होनेको आ गयी तो सत्यवतीने व्यासजीका स्मरण किया और उनसे वंशरक्षाकी प्रार्थना की। इसपर व्यासजीने नियोगविधिसे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरको उत्पन्न किया।

हयग्रीवावतारकी कथा—एक समयकी बात है, भगवान् विष्णु दस हजार वर्षोंतक युद्ध करनेके कारण थक गये थे, अतः वे एक शुभ स्थानपर पद्मासन लगाकर बैठ गये। उस समय उन्होंने पृथ्वीपर स्थित प्रत्यंचा चढ़े हुए धनुषपर अपना कण्ठप्रदेश टिका लिया था और संयोगवश उन्हें इसी अवस्थामें गहरी निद्रा आ गयी।

कालान्तरमें देवताओंने एक यज्ञ करनेका निश्चय किया और इसके लिये वे ब्रह्मा और शिवजीके साथ यज्ञाधिपति विष्णुके पास गये। उन्हें निद्राके वशीभूत अचेत पड़ा देखकर देवताओंको यह सोचकर बड़ी चिन्ता हुई कि निद्राभंग करना महान् दोष है और यज्ञ भी अवश्यकरणीय है।

इसपर सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने दीमकका सृजन किया और उसे यज्ञमें आस-पास गिरे हव्यको प्राप्त करनेका अधिकार देकर भगवान् विष्णुके धनुषकी डोरीको काट देनेको कहा। ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर दीमकने धनुषकी डोरी काट दी। उस डोरीके कटते ही ब्रह्माण्डको विक्षुब्ध कर देनेवाली भयंकर ध्वनि हुई और सर्वत्र अन्धकार छा गया। थोड़ी देर बाद जब अन्धकार दूर हुआ तो देवताओंने देखा कि भगवान् विष्णुका सिरविहीन धड़ पड़ा है और सिर गायब है। यह घटना देखकर देवगण स्तब्ध रह गये, वे करुणापूर्ण रुदन करने लगे। सबको किंकर्तव्यविमूढ देखकर ब्रह्माजीने सभी देवताओंसे भगवती जगदम्बाकी स्तुति करनेको कहा। देवताओंका

* श्रीमद्भागवतमें शुकदेवजीके जन्म आदिकी कथा अन्य प्रकारसे है। ये कथाएँ कल्पान्तरकी मानी जाती हैं। इसलिये कोई संशय नहीं करना चाहिये।
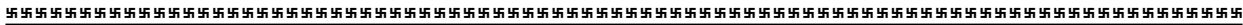
कष्ट देखकर और उनकी स्तुति सुनकर आद्याशक्ति भगवती जगदम्बा प्रकट हुईं और देवताओंको आश्वासन देते हुए वे बोलीं—एक बार भगवान् विष्णु लक्ष्मीको देखकर अकारण हँसने लगे थे। दुर्भाग्यसे उस समय लक्ष्मीमें तामसी भाव आ गया और उन्होंने यह सोचकर कि भगवान् विष्णु मेरे मुखको देखकर हँस रहे हैं, शाप दे दिया कि तुम्हारा सिर कट जायगा। इसलिये इनका सिर कटकर लवणसागरमें गिर गया है, परंतु इस घटनामें भी तुमलोगोंका हित ही निहित है; क्योंकि प्राचीनकालमें हयग्रीव नामके एक दैत्यने मेरे मायाबीजमन्त्रका जप करते हुए घोर तपस्या की थी। उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर मैं प्रकट हुई और उससे वरदान माँगनेको कहा। इसपर उसने यह वरदान माँगा कि मेरे ही स्वरूपवालेसे मेरी मृत्यु हो।

अत: विष्णुके धड़में एक घोड़ेका सिर काटकर लगा दो, ये ही हयग्रीवस्वरूपसे उस हयग्रीव नामक दैत्यका वध करेंगे। देवीके ऐसा कहनेपर विश्वकर्माने अपनी तीक्ष्ण तलवारसे एक घोड़ेका सिर काटकर भगवान् विष्णुके धड़पर जोड़ दिया। इस प्रकार भगवान् विष्णुका हयग्रीव-अवतार हुआ और देवीकी कृपासे उन्होंने हयग्रीवदैत्यका वधकर देवताओंको संकटमुक्त किया।

देवीकी कृपासे विष्णुद्वारा मधु-कैटभका वध— प्रलयावस्थामें जब तीनों लोक महाजलराशिमें विलीन हो गये तब देवाधिदेव भगवान् विष्णु शेष-शय्यापर सो गये। उस समय उनके कानोंकी मैलसे मधु-कैटभ नामक दो महाबली दानव उत्पन्न हुए। विशाल समुद्रमें रहते हुए वे दोनों सोचने लगे कि हम कौन हैं ? हमारा जन्म क्यों हुआ ? इस जलराशिका आधार क्या है ? इस प्रकार जब वे सोच रहे थे, उसी समय आकाशवाणीसे उन्हें वाग्बीजमन्त्र (ऐं) सुनायी दिया। उन दैत्योंने उस मन्त्रको हृदयंगम कर लिया और इन्द्रियोंका संयमकर एक हजार वर्षोंतक उसका जप करते रहे। उनकी इस घोर तपस्यासे प्रसन्न होकर आद्याशक्ति भगवतीने आकाशवाणीके माध्यमसे कहा कि मैं प्रसन्न हूँ, तुम दोनों अपना मनोवांछित वर माँगो। तब उन दानवोंने कहा कि हे देवि! हमारी मृत्यु हमारे इच्छानुसार हो। देवीने कहा—तुम दोनों अपनी इच्छासे ही मृत्युको प्राप्त होओगे, इसमें सन्देह नहीं।

वर प्राप्त करनेके बाद उन मदोन्मत्त दानवोंने सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीको कमलके आसनपर बैठे देखा। उन्हें देखकर युद्धकी लालसासे वे दोनों कहने लगे—हे सुव्रत! आप हमलोगोंके साथ युद्ध कीजिये, अन्यथा यह कमल-आसन छोड़ दीजिये; क्योंकि कोई वीर ही इस शुभ आसनके योग्य है। उन दानवोंके इस कथनको सुनकर भयातुर हो ब्रह्माजी कमलनालमें प्रविष्ट होकर भगवान् विष्णुकी स्तुति करने लगे, परंतु योगनिद्राके वशीभूत होनेके कारण भगवान् विष्णु जग नहीं सके। तब ब्रह्माजीने पराम्बा भगवती योगनिद्राकी स्तुति की। उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वे तामसीदेवी भगवान् विष्णुके शरीरसे निकलकर आकाशमें स्थित हो गयीं और भगवान् विष्णु जम्हाई लेते हुए सचेत हो गये।

अपने सामने भयसे काँपते ब्रह्माजीको देखकर भगवान् विष्णुने उनसे भयका कारण पूछा तो ब्रह्माजीने मधु-कैटभके वृत्तान्तका वर्णन किया। इसपर भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीको आश्वासन देते हुए दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा। भगवान् विष्णुने पाँच हजार वर्षोंतक उन दैत्योंसे युद्ध किया, परंतु उनका वध न कर सके तो उन्होंने आद्याशक्ति पराम्बा भगवतीका स्मरण किया; जिससे उन्हें यह ज्ञात हुआ कि पराम्बा भगवतीने इन्हें इच्छामृत्युका वरदान दिया है। इसपर उन्होंने देवी भुवनेश्वरीकी स्तुति की और उन मदोन्मत्त दैत्योंके वधमें निमित्त बननेको कहा। भगवान् विष्णुकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवती जगदम्बाने मधु-कैटभको मोहित कर दिया। तब वे दोनों विष्णुभगवान्से कहने लगे कि हे विष्णो! तुम हमलोगोंसे कोई वरदान माँग लो। इसपर भगवान् विष्णुने कहा कि यदि तुम दोनों मुझपर प्रसन्न हो तो मेरे हाथों मारे जाओ। भगवतीकी मायासे मोहित उन दोनोंने भगवान् विष्णुकी जंघापर अपने सिर रख दिये और विष्णुने सुदर्शनचक्रसे उनके मस्तक काट दिये। इस प्रकार भगवती जगदम्बाकी कृपासे मधु-कैटभ नामक दैत्योंका वध हुआ।

इसके अनन्तर बुधके जन्मकी कथा, राजा सुद्युम्नकी इला नामक स्त्रीके रूपमें परिणति, इलाका बुधसे विवाह तथा पुरूरवाकी उत्पत्ति तथा राजा पुरूरवा एवं उर्वशीकी कथाका वर्णन भी प्रथम स्कन्धमें प्राप्त होता है।

द्वितीय स्कन्ध

वेदव्यासजीका प्राकट्य— द्वितीय स्कन्धकी कथाका प्रारम्भ व्यासजीके जन्मसे होता है। अद्रिका नामकी एक अप्सराने अपने चंचल स्वभावके कारण प्राणायाम करते हुए एक ब्राह्मणके ध्यानमें विघ्न डाला, जिससे उस क्रोधित ब्राह्मणके शापसे यमुनाके जलमें उसे मछली होना पड़ा।

कालान्तरमें राजा उपरिचरके तेजसे मछलीके पेटसे एक बालक मत्स्य तथा एक बालिका मत्स्यगन्धाका जन्म हुआ। आगे चलकर एक घटनाक्रममें मत्स्यगन्धाके किशोरावस्था प्राप्त होनेपर पराशरमुनि उसपर आसक्त हो गये और उसीसे व्यासमुनिका जन्म हुआ। जो पुराणों और महाभारतके रचयिता तथा वेदोंका विभाग करनेवाले हुए। व्यासजी भगवान् विष्णुके अंशावतार थे। जन्म लेते ही वे बड़े हो गये और तपस्या करनेके लिये चले गये।

पराशरमुनिके वरदानसे व्यासजीको जन्म देनेके बाद भी मत्स्यगन्धा कन्या ही बनी रही और उसके शरीरसे दिव्य सुगन्ध निकलती थी। यही मत्स्यगन्धा सत्यवती नामसे विख्यात हुई और कुरुवंशी महाराज शन्तनुकी दूसरी पत्नी बनी।

राजा परीक्षित्का राज्याभिषेक—आगेकी कथामें राजा शन्तनु, गंगा और भीष्मके पूर्वजन्मकी कथा आती है। गंगाजीद्वारा राजा शन्तनुका पतिरूपमें वरण, गंगाके आठवें पुत्रके रूपमें राजा भीष्मका जन्म, भीष्मद्वारा आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेकी प्रतिज्ञा और शन्तनुका सत्यवतीसे विवाह सम्पन्न होनेकी कथा है। तदनन्तर महर्षि दुर्वासाके द्वारा कुन्तीको अमोघ कामदमन्त्र प्राप्त होता है। मन्त्रके प्रभावसे कन्यावस्थामें ही कर्णके जन्म, कुन्तीका राजा पाण्डुसे विवाह, मन्त्र-प्रयोगसे कुन्ती और माद्रीसे पाँचों पाण्डवोंके जन्मकी कथा आती है। पाँचों पाण्डवोंका द्रुपदकन्या द्रौपदीसे विवाह तथा भगवान् श्रीकृष्णकी बहन सुभद्रासे अर्जुनका विवाह होता है, जिससे महान् वीर अभिमन्युका जन्म होता है और महाभारतके युद्धमें उसकी मृत्यु भी होती है। अभिमन्युके पुत्र परीक्षित्का जन्म होता है। महाभारतके युद्धमें धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंकी मृत्यु हो जाती है। अतः धृतराष्ट्र युधिष्ठिरके संरक्षणमें रहते हैं। धृतराष्ट्र युधिष्ठिरसे प्राप्त धनके द्वारा अपने सौ पुत्रोंका और्ध्वदैहिक कर्म तथा पिण्डदान आदि कृत्य करके गान्धारीको साथ लेकर वनके लिये प्रस्थान करते हैं। साथमें कुन्ती तथा महामति विदुर भी उनका अनुसरण करते हैं। कालान्तरमें विदुर, धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीका वनमें प्राणान्त हो जाता है। पाँचों पाण्डव अपने पौत्र परीक्षित्को राजा बनाकर द्रौपदीसहित हिमालयकी ओर प्रस्थान करते हैं और वहीं उनका स्वर्गारोहण हो जाता है।

राजा परीक्षित्ने साठ वर्षोंतक धर्मपूर्वक समस्त पृथ्वीका पालन किया। एक दिन वे आखेटके लिये वनमें गये और कलिके प्रभावसे प्रभावित होकर एक ऋषिके गलेमें उन्होंने मरा हुआ सर्प डाल दिया। जिसके कारण मुनिपुत्रने सात दिनोंमें तक्षकसर्पके द्वारा राजाको डँसनेका शाप दे दिया। राजाके द्वारा अपनी सुरक्षाकी पूरी व्यवस्था की गयी, परंतु वे मृत्युसे बच नहीं सके।

राजा परीक्षित्की मृत्युके बाद उनके पुत्र जनमेजय राजा बने। उन धर्मात्मा राजाके राज्यमें प्रजा अत्यन्त सुखी थी। एक दिन उत्तंक नामक मुनि उनके पास आये। उत्तंकमुनिने जनमेजयको सर्प-सत्र करके सर्पोंका संहारकर अपने पिताका बदला लेनेकी प्रेरणा की, परंतु राजा जनमेजयने कहा कि मुनिवर! मेरे पिताकी मृत्यु तो मुनिपुत्रके शापके कारण हुई थी, फिर इसमें तक्षकसर्पका क्या दोष है? इसपर उत्तंकने उन्हें बताया कि कश्यप नामका एक मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण आपके पिताको जीवित करनेके लिये आ रहा था, परंतु तक्षकने उसे धन देकर मार्गमें ही वापस कर दिया, अतः आपके पिताकी मृत्युमें तक्षक दोषी है।

आस्तीकमुनिद्वारा सर्पसत्र रोकना—उत्तंकमुनिका यह वचन सुनकर राजा जनमेजय बहुत दुःखी हुए और उन्होंने सर्पसत्र प्रारम्भ किया, जिसमें हवनकुण्डकी प्रज्वलित अग्निमें सहस्रों सर्प गिरकर मरने लगे। उस समय आस्तीक नामके मुनि वहाँ पधारे और उन्होंने राजा जनमेजयको सर्पसत्र रोकनेकी प्रेरणा की। आस्तीकमुनिके समझानेपर राजाने सर्पसत्र बन्द कर दिया। इस प्रकार आस्तीकमुनिने नागवंशकी रक्षा की।

सर्पसत्र रोकनेके बाद अशान्तचित्त राजा जनमेजयको श्रीवैशम्पायनजीने महाभारतकी कथा सुनायी, परंतु उन्हें शान्ति नहीं मिली। उन्होंने महामुनि वेदव्यासजीसे कहा—हे भगवन्! मेरे मनको शान्ति नहीं मिल रही है, आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे दुर्गतिको प्राप्त मेरे पिता शीघ्र स्वर्ग चले जायँ। इसपर व्यासजीने कहा—हे राजन्! आप देवीयज्ञ करके श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणका श्रवण कीजिये। इस पुराणके श्रवणसे आपके चित्तको परम शान्तिकी प्राप्ति होगी और आपके पितरोंको अक्षय स्वर्ग प्राप्त होगा। इस प्रकार द्वितीय स्कन्धकी कथा पूर्ण होती है।

तृतीय स्कन्ध

त्रिदेवोंको भगवतीकी महामाया और मणिलोकका दर्शन—तृतीय स्कन्धका प्रारम्भ महाराज जनमेजयके ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति और उत्पत्तिकर्ता-सम्बन्धी प्रश्नसे होता है। राजा जनमेजयने यह भी जानना चाहा कि भगवती अम्बा कौन हैं,

उनके यज्ञका क्या विधान है? सर्वश्रेष्ठ देवता कौन है—इन प्रश्नोंके उत्तरमें व्यासजीने पूर्वकालमें नारदसे हुए एक संवादको सुनाया, जो नारदजीको ब्रह्माजीने इस प्रकार बताया था—

मधु-कैटभसे युद्ध करते हुए जब भगवान् विष्णुको पाँच हजार वर्ष बीत गये और वे दानव न मारे जा सके तो भगवान् विष्णुने भगवती महामायाका स्मरण किया। भगवतीने विष्णुकी दयनीय स्थिति देखकर उन दानवोंको अपने दृष्टिपातसे मोहित कर दिया और तब विष्णुने उनका वध कर दिया। उस समय भगवान् शंकर भी वहाँ आ गये और हम तीनोंने उन आद्याशक्ति महामाया भगवतीकी भक्तिपूर्वक स्तुति की। इसपर प्रसन्न होकर भगवतीने हम सबसे कहा—हे ब्रह्मा-विष्णु-महेश! अब आपलोग सृष्टि, पालन एवं संहारके अपने-अपने कार्य प्रमादरहित होकर कीजिये। उसी समय एक रमणीक विमान वहाँ आ उपस्थित हुआ, जिसपर भगवतीकी आज्ञासे हम तीनों आरूढ़ हो गये। मनकी गतिसे उड़ता हुआ वह विमान स्वर्गलोकसदृश एक लोकमें पहुँचा, जहाँका राजा इन्द्रके जैसा था। उसके बाद वह विमान ब्रह्मलोक पहुँच गया। वहाँ ब्रह्माजी तथा मूर्तरूप वेद-वेदांगों, समुद्रों और नदियों आदिको देखकर हम तीनों आश्चर्यचकित हो गये। इसके बाद वह विमान क्रमश: कैलास और वैकुण्ठधाम गया और वहाँ हमलोगोंने शिव और विष्णुको भी अपने-अपने गणों और परिकरोंके साथ देखा। तदनन्तर वह विमान भगवतीके दिव्य धाम मणिद्वीपमें पहुँचा। वहाँ विमानसे उतरकर हमलोग भगवतीके दिव्य मन्दिरकी ओर गये, पर जैसे ही द्वारपर पहुँचे वैसे ही हम तीनों स्त्रीरूपमें परिणत हो गये। उस स्त्रीवेषमें हम तीनोंने भगवतीके चरणकमलोंके दर्शन किये। हमारे प्रणाम करनेपर भगवतीने अपनी कृपादृष्टि हमपर डाली; उसी समय हमने उनके चरणकमलोंके नखरूपी दर्पणमें समस्त स्थावरजंगमात्मक ब्रह्माण्डके साथ-साथ स्वयंको भी देखा। सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, वरुण, कुबेर, वायु, अग्नि, पर्वत, समुद्र आदि भी उसमें दिखायी दे रहे थे। यह सब देखकर हम सब आश्चर्यचकित हो गये।

भगवान् विष्णुने उन भगवती भुवनेश्वरीकी स्तुति करते हुए कहा—हे भवानि! आपके द्वारा रचित इस ब्रह्माण्डप्रपंचमें न जाने कितने ब्रह्माण्ड भरे पड़े हैं, हे देवि! मैं आपके चरणोंमें बार-बार नमन करता हूँ। भगवान् शंकरने उन जगदम्बाकी स्तुति करते हुए कहा—हे शिवे! आपकी इस लीलाको हम नहीं जान सकते। हे देवि! मुझपर दयाकर अपने नवार्ण-मन्त्रका दान दीजिये, जिसका निरन्तर जपकर मैं सदाके लिये सुखी हो जाऊँ। भगवतीने प्रसन्न होकर नवार्ण-मन्त्रका उच्चारण किया, जिसे शिवजीने ग्रहणकर भगवतीके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर मैंने (ब्रह्माजीने) पूछा—हे देवि! आप और परब्रह्ममें क्या भेद है? इसपर भगवती जगदम्बिकाने कहा—मैं और परब्रह्म सदा एक ही हैं। हममें कोई भेद नहीं है; क्योंकि जो वे हैं, वही मैं हूँ और जो मैं हूँ, वही वे हैं। बुद्धिभ्रमसे ही हम दोनोंमें भेद दिखायी पड़ता है। अब आपलोग जाइये और अपने-अपने लोकोंकी रचनाकर उसमें निवास कीजिये।

यह कहकर भगवतीने अपनी महासरस्वती नामक शक्तिको मुझे अपनी सहचरी बनानेके लिये प्रदान किया। इसी प्रकार उन्होंने अपनी महालक्ष्मी नामक शक्ति विष्णुको और महाकाली नामक शक्ति भगवान् शंकरको प्रदान की। भगवतीने हमसे कहा—जो विष्णु हैं, वे ही साक्षात् शिव हैं और जो शिव हैं, वे ही विष्णु हैं। उन दोनोंमें भेद करनेवाला नरकगामी होता है। तत्पश्चात् हम तीनों भगवतीसे विदा होकर विमानपर आये और पुन: पुरुषरूपमें हो गये। उस विमानसे हम पुन: वहीं पहुँच गये, जहाँ विष्णुने मधु-कैटभका वध किया था।

त्रिगुणमयी सृष्टिका निरूपण—जनमेजयको यह प्रसंग सुनाकर व्यासजीने उन्हें नारदजीद्वारा बताया गया वह प्रसंग सुनाया, जो नारदजीसे ब्रह्माजीने कहा था। नारदजीने ब्रह्माजीसे कहा—हे पितामह! निर्गुणा शक्ति और निर्गुण परमात्मा कैसे हैं? ब्रह्माजीने कहा—हे नारद! जो शक्ति हैं, वे ही परमात्मा हैं और जो परमात्मा हैं, वे ही परम शक्ति मानी गयी हैं। इन दोनोंमें विद्यमान सूक्ष्म अन्तरको कोई नहीं जान सकता। सगुण मनुष्य निर्गुण परमात्माका दर्शन नहीं कर सकता। स्थूल और सूक्ष्मभेदसे परमात्माके दो रूप होते हैं, उनमें ज्ञानरूप निराकारस्वरूप सबका कारण कहा गया है। परमात्माका स्थूल विराट् स्वरूप—ब्रह्माण्ड पंच महाभूतोंकी पंचीकरण-क्रियासे बना है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये पंचमहाभूत हैं तथा गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये इनकी पंचतन्मात्राएँ हैं। गुण तीन हैं—सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। सत्त्वगुणका वर्ण श्वेत है, यह सर्वदा धर्मके प्रति प्रीति उत्पन्न करता है। सरलता, सत्य, शौच, श्रद्धा, क्षमा, धैर्य, कृपा, लज्जा, शान्ति और सन्तोष—ये सत्त्वगुणीके लक्षण हैं। रजोगुण रक्तवर्णवाला कहा गया है। रजोगुणीमें ईर्ष्या, द्रोह, मत्सर, स्तम्भन, उत्कण्ठा, निद्रा,

अभिमान, मद एवं गर्व होते हैं। तमोगुणका वर्ण कृष्ण होता है। यह मोह और विषाद उत्पन्न करता है। आलस्य, अज्ञान, निद्रा, दीनता, भय, विवाद, कायरता, कुटिलता, क्रोध, विषमता, नास्तिकता और परदोषदर्शन—ये तमोगुणीके लक्षण हैं। किसी भी प्राणीमें सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण अकेले नहीं रहते, अपितु मिश्रित धर्मवाले वे तीनों गुण एक-दूसरेके आश्रयीभूत होकर रहते हैं। केवल सत्त्वगुण कहीं भी परिलक्षित नहीं होता है। गुणोंके परस्पर मिश्रीभाव होनेसे सत्त्वगुण भी मिश्रित दिखायी देता है। यदि ये तीनों गुण परस्पर मिश्रित न होते तो उनके स्वभावमें एक-सी ही प्रवृत्ति रहती, किंतु तीनों गुणोंमें मिश्रण होनेके कारण ही विभिन्नताएँ दिखायी पड़ती हैं। उदाहरणके लिये राजकीय सेना रजोगुणयुक्त होती है, परंतु दुष्टोंसे रक्षा करनेके कारण सज्जनोंको वह सत्त्वगुणसम्पन्न और दुर्जनोंको तमोगुणी दिखायी देती है।

देवीके सारस्वत बीजमन्त्रकी महिमा—इस प्रकार यह सम्पूर्ण सृष्टि त्रिगुणमयी है। भगवती परमेश्वरी ही कार्यभेदसे सगुणा और निर्गुणा दोनों हैं। वे ही इस सत् और असद्रूप जगत्‌की रचना करती हैं। समस्त देवता उनकी शक्तिसे युक्त होकर अपने-अपने कार्य-सम्पादनमें समर्थ होते हैं। ये भगवती नामोच्चारणमात्रसे मनोवांछित फल देनेवाली हैं। 'ऐं' इनका बीजमन्त्र है। सत्यव्रत नामक एक निरक्षर तथा महामूर्ख ब्राह्मणने इस मन्त्रका बिन्दुरहित अशुद्ध उच्चारण करके भी सिद्धि प्राप्त कर ली थी। उस ब्राह्मण सत्यव्रतने किरातके बाणसे घायल एक सूअरको देखकर दयावश 'ऐ-ऐ' कहा। उस बिन्दुरहित सारस्वत बीजमन्त्रके प्रभावसे उसके हृदयमें समस्त विद्याएँ प्रस्फुटित हो गयीं।

व्यासजीने जनमेजयको भगवतीका यह अत्युत्तम माहात्म्य सुनाते हुए कहा कि परम भक्तिपूर्वक सदैव भगवतीकी अर्चना करनी चाहिये।

देवीयज्ञकी महिमा—राजा जनमेजयने कहा—हे स्वामिन्! मैं देवीयज्ञ करूँगा, आप उस यज्ञकी विधि, मन्त्र, होमद्रव्य, ब्राह्मणसंख्या और दक्षिणा आदिके विषयमें सम्यक् रूपसे बताइये।

व्यासजी बोले—हे राजन्! सात्त्विक, राजस और तामसभेदसे यज्ञ तीन प्रकारके होते हैं। जिस यज्ञमें देश, काल, द्रव्य, मन्त्र, ब्राह्मण तथा श्रद्धा सात्त्विक हों; वह सात्त्विक यज्ञ है। पाण्डवोंके यज्ञमें द्रव्य अन्यायोपार्जित था, इसलिये राजसूययज्ञकी पूर्णताके बाद भी पाण्डवों तथा द्रौपदीको नाना प्रकारके कष्ट सहन करने पड़े। अभिमानपूर्वक क्षत्रियों और वैश्योंद्वारा किये जानेवाले पशुबलिसम्बन्धी यज्ञ राजस यज्ञ कहे जाते हैं। क्रोध, ईर्ष्या और क्रूरतापूर्वक राक्षसोंद्वारा किये जानेवाले यज्ञ तामस यज्ञ कहे जाते हैं।

मोक्षकी कामनावाले विरक्त मुनियोंके लिये मानस यज्ञ कहा गया है। इस यज्ञमें मनका शुद्ध और गुणरहित होना आवश्यक है। यह यज्ञ मोक्षप्रदाता है। स्वर्ग-प्राप्तिकी इच्छावालेके लिये अग्निष्टोम यज्ञ बताया गया है। हे राजन्! आप देवीके बीजमन्त्रके जानकार विद्वान् ब्राह्मणोंद्वारा देवीयज्ञ कराइये, इसे पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने किया था। इसीसे आपके पिताका उद्धार होगा।

राजा जनमेजयने कहा—हे व्यासजी! आप मुझे भगवान् विष्णुद्वारा किये गये देवीयज्ञके विषयमें बतायें। इसपर व्यासजीने बताया कि मणिद्वीपसे विमानद्वारा क्षीरसागरमें आनेपर त्रिदेवोंने पृथ्वीको उत्पन्न किया, परंतु उस समयतक पृथ्वी चलायमान थी, तब देवीने अपनी आधारशक्तिसे पृथ्वीको अचल किया। तदनन्तर उसपर सुमेरु आदि पर्वतोंकी रचना हुई। वैकुण्ठ, कैलास और स्वर्ग आदि लोकोंका निर्माण हुआ। ब्रह्माजीने मरीचि आदि मानसिक पुत्रोंकी सृष्टि की। मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। कश्यपने दक्षप्रजापतिकी तेरह कन्याओंसे विवाह किया और उनसे ही सारी काश्यपी सृष्टि फैली, जिससे यह संसार भर गया।

एक समय भगवान् विष्णुको मणिद्वीपका स्मरण हो आया, तो उन्होंने अम्बायज्ञ करनेका निर्णय लिया। उन्होंने शिल्पियोंसे विशाल मण्डप बनवाया। ब्राह्मणगण बीजसहित देवीमन्त्रोंका जप करने लगे, प्रज्वलित अग्निमें आहुतियाँ दी जाने लगीं। उसी समय आकाशवाणी हुई—हे विष्णो! आप देवताओंमें श्रेष्ठतम होंगे, जब-जब पृथ्वीतलपर धर्मका ह्रास होगा, तब आप अपने अंशसे अवतार लेकर धर्मकी रक्षा करेंगे।

व्यासजीने देवीयज्ञके विषयमें बताकर राजा जनमेजयसे देवीमाहात्म्य-सम्बन्धी आख्यान इस प्रकार सुनाया—

सुबाहु तथा सुदर्शनपर जगदम्बाकी कृपा—अयोध्यामें भगवान् रामसे १५वीं पीढ़ी बाद ध्रुवसन्धि नामके राजा हुए। उनके दो स्त्रियाँ थीं। पट्टमहिषी थी कलिंगराज वीरसेनकी पुत्री मनोरमा और छोटी रानी थी उज्जयिनीनरेश युधाजित्‌की पुत्री लीलावती। मनोरमाके पुत्र हुए सुदर्शन और लीलावतीके शत्रुजित्। महाराजकी दोनोंपर ही समान दृष्टि थी। दोनों राजपुत्रोंका समान रूपसे लालन-पालन होने लगा।

इधर महाराजको आखेटका व्यसन कुछ अधिक था।
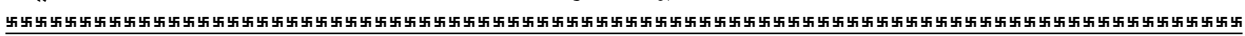
एक दिन वे शिकारमें एक सिंहके साथ भिड़ गये, जिसमें सिंहके साथ स्वयं भी स्वर्गगामी हो गये। मन्त्रियोंने उनकी पारलौकिक क्रिया करके सुदर्शनको राजा बनाना चाहा। इधर शत्रुजित्‌के नाना युधाजित्‌को इस बातकी खबर लगी तो वे एक बड़ी सेना लेकर इसका विरोध करनेके लिये अयोध्यामें आ डटे। इधर कलिंगनरेश वीरसेन भी सुदर्शनके पक्षमें आ गये। दोनोंमें युद्ध छिड़ गया, कलिंगाधिपति वीरसेन मारे गये। अब रानी मनोरमा डर गयी। वह सुदर्शनको लेकर एक धाय तथा महामन्त्री विदल्लके साथ भागकर महर्षि भारद्वाजके आश्रममें प्रयाग पहुँच गयी। युधाजित्‌ने अयोध्याके सिंहासनपर शत्रुजित्‌को अभिषिक्त किया और सुदर्शनको मारनेके लिये वे भारद्वाजके आश्रमपर पहुँचे; पर मुनिके भयसे वहाँसे उन्हें भागना पड़ा।

एक दिन भारद्वाजके शिष्यगण महामन्त्रीके सम्बन्धमें कुछ बातें कर रहे थे। कुछने कहा कि विदल्ल क्लीब (नपुंसक) है। दूसरोंने भी कहा—'यह सर्वथा क्लीब है।' सुदर्शन अभी बालक ही था। उसने बार-बार जो उनके मुँहसे क्लीब-क्लीब सुना तो स्वयं भी 'क्ली-क्ली' करने लगा। पूर्वपुण्यके कारण वह कालीबीजके रूपमें अभ्यासमें परिणत हो गया। अब वह सोते, जागते, खाते, पीते, 'क्ली-क्ली' रटने लगा। इधर महर्षिने उसके क्षत्रियोचित संस्कारादि भी कर दिये और थोड़े ही दिनोंमें वह भगवती तथा ऋषिकी कृपासे शस्त्र-शास्त्रादि सभी विद्याओंमें अत्यन्त निपुण हो गया। एक दिन वनमें खेलनेके समय उसे देवीकी दयासे अक्षय तूणीर तथा दिव्य धनुष भी पड़ा मिल गया। अब सुदर्शन भगवतीकी कृपासे पूर्ण शक्तिसम्पन्न हो गया।

इधर काशीमें उस समय राजा सुबाहु राज्य करते थे। उनकी कन्या शशिकला बड़ी विदुषी तथा देवीभक्ता थी। भगवतीने उसे स्वप्नमें आज्ञा दी कि 'तू सुदर्शनका अपने पतिरूपमें वरण कर ले। वह तेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करेगा।' शशिकलाने मनमें उसी समय सुदर्शनको पतिके रूपमें स्वीकार कर लिया। प्रात:काल उसने अपना निश्चय माता-पिताको सुनाया। पिताने लड़कीको जोरोंसे डाँटा और एक असहाय वनवासीके साथ सम्बन्ध जोड़नेमें अपना अपमान समझा। उन्होंने अपनी कन्याके स्वयंवरकी तैयारी आरम्भ की। उन्होंने उस स्वयंवरमें सुदर्शनको आमन्त्रित भी नहीं किया; परंतु शशिकला भी अपने मार्गपर दृढ़ थी। उसने सुदर्शनको एक ब्राह्मणद्वारा देवीका सन्देश भेज दिया। सभी राजाओंके साथ वह भी काशी आ गया।

इधर शत्रुजित्‌को साथ लेकर उसके नाना अवन्तिनरेश युधाजित् भी आ धमके थे। शशिकलाद्वारा सुदर्शनके मन-ही-मन वरण किये जानेकी बात सर्वत्र फैल गयी थी। इसे भला, युधाजित् कैसे सहन कर सकते थे। उन्होंने सुबाहुको बुलाकर धमकाया। सुबाहुने इसमें अपनेको दोषरहित बतलाया। तथापि युधाजित्‌ने कहा—'मैं सुबाहुसहित सुदर्शनको मारकर कन्याका बलात् अपहरण करूँगा।' राजाओंको बालक सुदर्शनपर कुछ दया आ गयी। उन्होंने सुदर्शनको बुलाकर सारी स्थिति समझायी और भाग जानेकी सलाह दी।

सुदर्शनने कहा—'यद्यपि न मेरा कोई सहायक है और न मेरे पास कोई सेना ही है, तथापि मैं भगवतीके स्वप्नगत आदेशानुसार ही यहाँ स्वयंवर देखने आया हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है, वे मेरी रक्षा करेंगी। मेरी न तो किसीसे शत्रुता है और न मैं किसीका अकल्याण ही चाहता हूँ।'

प्रात:काल स्वयंवर-प्रांगणमें राजालोग सज-धजकर आ बैठे तो सुबाहुने शशिकलासे स्वयंवरमें जानेके लिये कहा, पर उसने राजाओंके सामने होना सर्वथा अस्वीकार कर दिया। सुबाहुने राजाओंके अपमान तथा उनके द्वारा उपस्थित होनेवाले भयकी बात कही। शशिकला बोली—'यदि तुम सर्वथा कायर ही हो तो मुझे सुदर्शनके हवाले करके नगरसे बाहर छोड़ आओ।' कोई दूसरा रास्ता भी नहीं था, इसलिये सुबाहुने राजाओंसे तो कह दिया कि 'आपलोग कल स्वयंवरमें आइये, आज शशिकला नहीं आयेगी।' इधर रातमें ही उन्होंने संक्षिप्त विधिसे गुप्तरीत्या सुदर्शनसे शशिकलाका विवाह कर दिया और सबेरा होते ही उन्हें पहुँचाने लगे।

युधाजित्‌को भी बात किसी प्रकार मालूम हो गयी। वह रास्तेमें अपनी सेना लेकर सुदर्शनको मार डालनेके विचारसे स्थित था। सुदर्शन भी भगवतीका स्मरण करता हुआ वहाँ पहुँचा। दोनोंमें युद्ध छिड़नेवाला ही था कि भगवती साक्षात् प्रकट हो गयीं। युधाजित्‌की सेना भाग चली। युधाजित् अपने नाती शत्रुजित्‌के साथ खेत रहा।

राजा सुबाहु और सुदर्शनने भगवतीकी स्तुति की। भगवतीने प्रसन्न होकर राजा सुबाहुसे वर माँगनेको कहा। राजाने कहा—हे जगदम्बिके! आप सदैव इस काशीपुरीमें विराजमान रहिये और नगरकी रक्षा कीजिये। भगवती दुर्गाने कहा—हे राजन्! जबतक यह पृथ्वी रहेगी तबतक सभी लोगोंकी रक्षाके लिये मैं निरन्तर इस मुक्तिपुरी काशीमें निवास
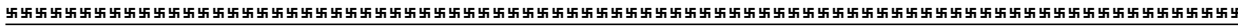
करूँगी।

इस प्रकार कहकर भगवती अन्तर्धान हो गयीं। तदनन्तर सुदर्शनने अयोध्या तथा राजा सुबाहुने काशीमें भगवती दुर्गाकी स्थापना की।* काशीके सभी लोग भगवान् विश्वनाथके समान भगवती दुर्गाकी भी पूजा-उपासना करने लगे।

नवरात्रव्रत तथा कुमारीपूजन—इसके बाद महाराज जनमेजयने नवरात्रव्रतका विधान पूछा। व्यासजीने बताया कि आत्मकल्याणके इच्छुक मनुष्योंके लिये यह व्रत अवश्यकरणीय है। इस व्रतमें कुमारी-पूजनका बहुत महत्त्व है। दो वर्षसे दस वर्षतककी कन्याओंका इस व्रतमें पूजन करना चाहिये। कन्याएँ रोगरहित और सौन्दर्यमयी होनी चाहिये। जो कन्या किसी अंगसे हीन हो, कोढ़ या घावयुक्त हो, अन्धी, कानी, कुरूप, बहुत रोमवाली या रजस्वला हो—उस कन्याका पूजन नहीं करना चाहिये। इस व्रतका माहात्म्य बताते हुए व्यासजीने कहा कि कोसलदेशमें सुशील नामक एक अत्यन्त निर्धन वैश्य था। घरमें अन्न न होनेके कारण उसने अपने पुत्रको घरसे निकाल दिया था। वह अपनी पुत्रीका विवाह करनेमें भी असमर्थ था। किसी ब्राह्मणश्रेष्ठने उसकी दशापर दयार्द्र होकर उसे नवरात्रव्रत करनेका उपदेश दिया। उस वैश्यने नवरात्रका व्रत किया, जिससे प्रसन्न होकर महाष्टमीकी अर्धरात्रिको भगवतीने उसे दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया।

स्वयं भगवान् श्रीरामने नारदजीके परामर्शसे रावणपर विजय प्राप्त करनेके लिये इस नवरात्रव्रतका अनुष्ठान किया था। अष्टमीकी मध्यरात्रिको भगवतीने साक्षात् दर्शन दिया और कहा कि हे नरोत्तम! देवताओंके अंशसे उत्पन्न ये वानर मेरी शक्तिसे सम्पन्न होकर आपके सहायक होंगे। आपके अनुज लक्ष्मण मेघनादका वध करेंगे और आप स्वयं पापी रावणका संहार करेंगे। इसके अनन्तर ग्यारह हजार वर्षोंतक आप भूतलका राज्यकर अपने लोकको प्रस्थान करेंगे। भगवतीका वरदान प्राप्तकर भगवान् रामने विजय प्राप्त की। इस प्रकार देवीके उत्तम माहात्म्यका वर्णन करनेवाला तीसरा स्कन्ध पूर्ण हुआ।

चतुर्थ स्कन्ध

कर्म-गतिका निरूपण—चतुर्थ स्कन्धका प्रारम्भ राजा जनमेजयके प्रश्नोंसे होता है। जनमेजयने व्यासजीके समक्ष अपनी बहुत सारी शंकाएँ प्रस्तुत कीं। श्रीकृष्ण स्वयं परब्रह्म परमात्मा थे तो फिर साक्षात् विष्णुने वसुदेवके पुत्ररूपमें कारागारमें जन्म क्यों ग्रहण किया, वसुदेव-देवकी भी देवताओंके पूज्य थे, पाण्डव भी देवताओंके अंशसे उत्पन्न थे और उनमें भी अर्जुन तो नरके अवतार थे, द्रौपदी लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न थीं, फिर इन सबको यहाँ पृथ्वीपर अनेक प्रकारके कष्ट क्यों सहन करने पड़े? जिन मुनिप्रवर नर-नारायणने मुक्तिहेतु कठोर तपस्या की थी, उन महातपस्वी तथा योगसिद्धसम्पन्न दोनों मुनियोंने कृष्ण तथा अर्जुनके रूपमें मानवशरीर क्यों प्राप्त किया? इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकारकी शंकाएँ जनमेजयजीने प्रस्तुत कीं।

इन प्रश्नोंके उत्तरमें व्यासजीने कहा—हे राजन्! इस विषयमें क्या कहा जाय, कर्मोंकी बड़ी गहन गति होती है। कर्मकी गति जाननेमें देवता भी समर्थ नहीं हैं, मानवोंकी क्या बात है! आदि तथा अन्तसे रहित होते हुए भी समस्त जीव कर्मरूपी बीजसे नानाविध योनियोंमें बार-बार जन्म लेते हैं और मरते हैं। शुभ, अशुभ तथा मिश्र कर्मोंसे यह जगत् सदा व्याप्त रहता है। संचित, प्रारब्ध तथा वर्तमान—ये तीन प्रकारके कर्म बताये गये हैं। सुख-दुःख, वृद्धावस्था, मृत्यु, हर्ष, शोक, काम-क्रोध तथा लोभ आदि ये सभी देहगत गुण हैं, जो दैवके अधीन होकर सभी जीवोंको प्राप्त होते हैं। समस्त जीवोंकी उत्पत्ति कर्मके बिना हो ही नहीं सकती। अतएव कर्मबीजकी अनिवार्यतापर बुद्धिमान् पुरुषोंको सदा चिन्तन करना चाहिये। सभी देहधारी जीव चाहे मनुष्य, पशु या देवता हों—अपने कियेका शुभाशुभ फल पाते हैं।

देवकी और रोहिणी नामक वसुदेवजीकी पत्नियाँ पूर्वजन्ममें अदिति और सुरसा थीं, वरुणके शापसे उन्हें मानवयोनिमें जन्म लेना पड़ा। इसी प्रकार वसुदेवजी पूर्वजन्ममें महर्षि कश्यप थे, वरुणदेवकी गायोंका हरण कर लेनेके कारण उन्हें मानवयोनिमें गोपालकके रूपमें जन्म लेना पड़ा। अदितिने इन्द्रके द्वारा दितिके गर्भस्थ शिशुको नष्ट करा दिया था, इसलिये दितिने क्रुद्ध होकर उसे मृतवत्सा होनेका शाप दे दिया था। यही अदिति देवकी हुई और उसके छहों पुत्र जन्म लेते ही मार दिये गये।

व्यासजीने कहा—हे राजन्! ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त स्थावर-जंगम सभी प्राणी मायाके वशीभूत रहते हैं और वह माया उनके साथ क्रीडा करती है। यह माया सभीको मोहमें डाल देती है और जगत्में निरन्तर विकार उत्पन्न करती है। चूँकि यह संसार अहंकारसे उत्पन्न हुआ है, अतः वह राग-

* सुबाहुको प्राप्त वरदानके फलस्वरूप ही दुर्गाकुण्डमें स्थित हुई पराम्बा दुर्गा वाराणसीपुरीकी अद्यावधि रक्षा कर रही हैं।

द्वेषहीन हो ही कैसे सकता है? यहाँतक कि देवता भी तपस्वियोंसे द्वेषवश उनके तपको भंग करनेका प्रयास करते हैं।

नर-नारायणकी तपस्या—देवराज इन्द्रने धर्मपुत्र नर-नारायणको तप करते देखकर उन्हें विविध प्रलोभन दिये तथा मोहिनी मायासे भयभीत करना चाहा, परंतु वे अविचल रहे। अन्तमें उन्होंने कामदेव, रति, वसन्त और अप्सराओंका समूह उनके तपभंगहेतु भेजा। परंतु भगवतीके मायाबीजमन्त्रका जप कर रहे उन दोनोंपर इन सबका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, बल्कि अप्सराओंके गर्वको भंग करनेके लिये नारायणने अनुपम सुन्दरी उर्वशीकी सृष्टि कर दी। इतना ही नहीं उन्होंने स्वर्गसे आयी सोलह हजार पचास अप्सराओंकी सेवाके लिये उतनी ही अप्सराएँ और उत्पन्न कर दीं। स्वर्गसे आयी अप्सराओंने मुनि नारायणका रूप और प्रभाव देखकर मोहित हो उनसे प्रार्थना की कि हे नाथ! अब आप हम सबके पति बन जायँ। इसपर नारायणने कहा—इस जन्ममें तो यह सम्भव नहीं है, परंतु कृष्णावतारमें तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी।

अहंकार, राग-द्वेष देवताओंको ही नहीं ऋषि-मुनियोंको भी बाधित करता है, इसी अहंकारके कारण तपस्वी नर-नारायण और परम वैष्णव भक्त प्रह्लादमें एक हजार दिव्य वर्षोंतक भयंकर युद्ध हुआ। अन्तमें भगवान् विष्णुने आकर प्रह्लादको नर-नारायणका परिचय दिया।

वस्तुतः इस संसारका मूल कारण ही अहंकार है, उसीके कारण युद्ध होते हैं। राजस और तामस अहंकारके कारण कलह होते हैं। इस संसारचक्रका प्रवर्तन भी अहंकारके ही कारण होता है। यहाँतक कि साक्षात् नारायण श्रीहरिको भी नाना प्रकारकी योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। महर्षि भृगुके शापसे उन्हें मनुष्य-योनिमें जन्म लेना पड़ा तथा पत्नी-वियोगका दु:ख सहन करना पड़ा।

कृष्णावतारकी कथा—व्यासजीने राजा जनमेजयसे भगवान् श्रीहरिके कृष्णावतारकी कथा सुनाते हुए कहा—हे राजन् द्वापरयुगमें पृथ्वीपर जरासन्ध, शिशुपाल, काशिराज, कंस, रुक्मी और नरकासुर-जैसे पापाचारी शासक हो गये थे। उनके पापभारसे व्यथित होकर पृथ्वी ब्रह्माजी और इन्द्रसहित भगवान् विष्णुके पास गयी। भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे कहा—हे ब्रह्मन्! हम सब भगवतीके अधीन हैं, अत: हमें उन्हीं पराम्बा भगवती योगमायाकी शरणमें जाना चाहिये। उनके ऐसा कहनेपर देवताओंने भगवतीका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही भगवतीने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर अपनी शक्तिसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको निमित्त बनाकर पृथ्वीका भार दूर करनेका आश्वासन दिया।

इसके बाद व्यासजीने श्रीकृष्णजन्मकी कथा सुनायी। स्वयं साक्षात् परमात्माने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये कंसके कारागारमें अवतार लिया और विभिन्न प्रकारकी लीलाएँ कीं। परब्रह्म परमात्मा होते हुए भी उन्हें पृथ्वीतलपर अनेक कष्ट उठाने पड़े। रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नका शम्बरासुरने अपनी मायासे प्रसूतिगृहसे ही हरण कर लिया था। तब श्रीकृष्णने भगवती महामायाका स्तवन किया। उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर जगदम्बाने उन्हें दर्शन दिया और कहा कि सोलह वर्षबाद तुम्हारा पुत्र शम्बरासुरको मारकर तुम्हारे पास स्वयं ही वापस आ जायगा। ऐसा कहकर भगवती अन्तर्धान हो गयीं।

रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नके बाद जाम्बवतीने भी वैसे ही पुत्रकी प्राप्तिके लिये भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—इसपर श्रीकृष्णने भगवान् शंकरकी तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उन्हें प्रत्येक रानीसे दस पुत्र होनेका वरदान दिया।

तत्पश्चात् भगवती पार्वतीने कहा—हे कृष्ण! इस संसारमें आप सर्वश्रेष्ठ गृहस्थ होंगे। सौ वर्ष व्यतीत होनेपर एक विप्र तथा गान्धारीके शापके कारण आपके कुलका नाश हो जायगा और आप अपने भाई बलरामके साथ यह शरीर छोड़कर दिव्य लोकको प्रयाण करेंगे। आपको भविष्यके विषयमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि अवश्यम्भावी घटनाओंका कोई भी प्रतीकार सम्भव नहीं है। ऐसा कहकर भगवान् शिव समस्त देवताओं तथा पार्वतीसहित अन्तर्धान हो गये।

देवीमाहात्म्यका निरूपण—व्यासजीने कहा—हे राजन्! यद्यपि ब्रह्मा आदि देवता लोकके अधीश्वर हैं, पर वे भी उसी प्रकार उस मायाके अधीन रहते हैं, जैसे कठपुतली बाजीगरके अधीन रहती है। उनके पूर्वजन्मके संचित कर्म जिस प्रकारके होते हैं। उन्हींके अनुरूप परब्रह्मस्वरूपिणी माया उन्हें सदा प्रेरित किया करती हैं। उन भगवतीके हृदयमें किसी प्रकारकी विषमता अथवा निर्ममताका लेशमात्र भी नहीं रहता। वे अखिल भुवनकी ईश्वरी जीवोंको भवबन्धनसे छुटकारा दिलानेके लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहती हैं। निर्मल अन्त:करणवाले ऋषिगण उन्हीं आत्मस्वरूपिणी भगवतीका अपने हृदयमें आत्मसाक्षात्कार करके भवबन्धनसे मुक्त हुए हैं। इस प्रकार देवीके माहात्म्यनिरूपणमें चतुर्थ स्कन्धकी कथा पूर्ण होती है।

पंचम स्कन्ध

पंचम स्कन्धकी कथाके प्रारम्भमें जनमेजयने व्यासजीसे पूछा कि हे मुनिश्रेष्ठ! स्वयं भगवान् होते हुए भी श्रीकृष्णने शंकरजीकी तपस्या क्यों की? क्या उनमें कोई न्यूनता थी?

व्यासजीने कहा—हे राजन्! श्रीकृष्णने मानवदेह धारण करनेके कारण मानवोचित कार्य किये। जहाँतक श्रेष्ठताकी बात है तो ॐकारका 'अ' ब्रह्माका रूप है, 'उ' विष्णुका रूप है, 'म्' शिवका रूप है और अर्धमात्रा (चन्द्रबिन्दु) भगवती महेश्वरीका रूप है। ये उत्तरोत्तर क्रमसे एक दूसरेसे उत्तम हैं। वस्तुतः मकड़ीके तन्तु-जालमें फँसे कीटकी भाँति ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि ये सभी देव उन भगवतीकी लीलासे मायारूपी बन्धनमें पड़ जाते हैं।

देवीमाहात्म्यमें महिषासुर आदि दैत्योंके वधकी कथा—राजा जनमेजयने भगवतीके ऐसे प्रभावको सुनकर व्यासजीसे उनकी महिमाका वर्णन करनेको कहा। इसपर व्यासजीने उन्हें महिषासुरके जन्म, तपस्या और वरदान-प्राप्तिकी कथा सुनायी। उस महिषासुरने ब्रह्मा, विष्णु और शिवसहित इन्द्रादि देवताओंको पराजित करके स्वर्गपर आधिपत्य कर लिया था। देवताओंकी दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी थी, अतः इन्द्र ब्रह्माजी और भगवान् शंकरको साथ लेकर भगवान् विष्णुके पास गये। वहाँ उन ब्रह्मा आदि समस्त देवताओंके शरीरसे महान् तेजःपुंज निकला और उस तेजोराशिसे भगवती जगदम्बाका प्राकट्य हुआ। समस्त देवताओंने उन्हें आयुध और आभूषण समर्पित करके उनकी स्तुति की। देवीने देवताओंको आश्वासन देते हुए प्रचण्ड अट्टहास किया। उस अट्टहासको सुनकर महिषासुर उद्विग्न हो गया। उसने अपने अमात्यको अट्टहास करनेवालेकी खोजमें भेजा। देवीने महिषासुरके अमात्यको अपने प्राकट्यका उद्देश्य बताते हुए कहा कि या तो समस्त दैत्य पाताल चले जायँ अथवा यमलोक जानेके लिये तैयार हो जायँ। देवीका यह वचन सुनकर महिषासुरने क्रुद्ध होकर युद्ध करनेकी घोषणा की। भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें क्रमशः महिषासुरके बाष्कल, दुर्मुख, चिक्षुर, ताम्र, बिडाल और असिलोमा आदि सभी सेनापति मारे गये। अन्तमें महिषासुर रणभूमिमें आया और अपने सेनानायकों दुर्धर, त्रिनेत्र और अन्धकके साथ मारा गया। उसके मर जानेपर सभी देवता, मुनिगण, मनुष्य और साधुजन प्रसन्न हो गये। देवताओंने भगवतीकी स्तुति की। देवीने कहा कि जब तुम सबको कोई घोर संकट पड़े तब मेरा स्मरण करना, मैं तुम सबकी रक्षा करूँगी। यह कहकर देवी अपने धाम मणिद्वीप चली गयीं और अयोध्याधिपति महाराज शत्रुघ्न भूमण्डलाधिपति हो गये। उनके शासनकालमें पृथ्वी सभी प्रकारके सुखोंसे परिपूर्ण थी।

भगवतीके इस उत्तम माहात्म्यको सुनानेके बाद व्यासजीने शुम्भ-निशुम्भके वधसम्बन्धी देवीके चरित्रको सुनाया। शुम्भ और निशुम्भने तपस्या करके ब्रह्माजीसे यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि पुरुष-जातिका कोई भी देव, दानव या मानव उन्हें मार न सके। वरदानके प्रभावसे मदमत्त उन दोनोंने स्वर्गपर आक्रमण करके वहाँ अपना आधिपत्य जमा लिया। तब अत्यन्त कष्टमें पड़े देवताओंने भगवतीकी स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर वे प्रकट हुईं। देवताओंने उनसे शुम्भ-निशुम्भ तथा अन्य दानवोंके अत्याचारका वर्णन किया और उनसे त्राण दिलानेकी प्रार्थना की। देवताओंकी प्रार्थनापर भगवतीने अपना एक अन्य रूप प्रकट किया, जो 'कौशिकी' नामसे जाना गया। उनका दूसरा रूप 'कालिका' नामसे विख्यात हुआ। भगवतीके सुन्दर कौशिकी रूपको देखकर एक दिन शुम्भ-निशुम्भके एक सेवकने यह बात शुम्भको बतायी। शुम्भने अपना सुग्रीव नामक एक दूत भगवती कौशिकीके पास भेजा। कौशिकीने उसे अपना उद्देश्य बताते हुए कहा कि मैं देवताओंको स्वर्गका आधिपत्य और यज्ञ-भाग दिलानेके लिये आयी हूँ। तुमलोग पाताल चले जाओ, अन्यथा मुझसे युद्ध करो। जो मुझे युद्धमें पराजित करेगा, वही मेरा पाणिग्रहण कर सकेगा। शुम्भने भगवतीकी युद्धकी चुनौती सुनकर अपने सेनापतियों क्रमशः धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड और रक्तबीजको विशाल वाहिनियोंके साथ भेजा; परंतु वे सभी भगवती कालिकाद्वारा मारे गये। शुम्भका भाई निशुम्भ भी भगवतीके हाथों मृत्युको प्राप्त हुआ। अन्तमें शुम्भ युद्ध करनेके लिये आया और भगवती कालिकाके हाथों मारा गया।

भगवतीके इस उत्तम चरितका आख्यान सुनकर राजा जनमेजयने व्यासजीसे पूछा कि हे मुने! इन उत्तम चरितोंद्वारा भगवतीकी आराधना सबसे पहले किसने की? इसपर व्यासजीने बताया कि स्वारोचिष नामक मन्वन्तरमें सुरथ नामके एक राजा हुए थे। शत्रुओंसे पराजित होकर वे महामुनि सुमेधाके आश्रममें रहने लगे, वहीं अपने परिवारसे परित्यक्त होकर विषादग्रस्त समाधि नामक एक वैश्य भी आकर रहने लगा। दोनों अत्यन्त दुःखित थे, उन्होंने सुमेधामुनिसे अपने दुःखकी निवृत्तिका उपाय बतानेकी प्रार्थना की। इसपर उन्होंने महामायाकी महिमाको एक दृष्टान्तद्वारा बताया कि ब्रह्मा, विष्णु आदि

देवगण भी मायासे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते—

शिवपूजामें केतकी पुष्पका निषेध—एक बार ब्रह्मा-विष्णुमें परस्पर विवाद हुआ कि दोनोंमें श्रेष्ठ कौन है? उसी समय एक अखण्ड ज्योति लिंगके रूपमें प्रकट हुई तथा आकाशवाणी हुई कि आप दोनों इस लिंगके ओर-छोरका पता लगायें। जो पहले पता लगायेगा, वही श्रेष्ठ होगा। विष्णु पातालकी ओर गये और ब्रह्मा ऊपरकी ओर। विष्णु थककर वापस आ गये। ब्रह्माजी शिवके मस्तकसे गिरे हुए केतकी पुष्पको लेकर ऊपरसे लौट आये और विष्णुसे कहा कि यह केतकी पुष्प मैंने लिंगके मस्तकसे प्राप्त किया है। केतकी पुष्पने भी ब्रह्माके पक्षमें विष्णुको असत्य साक्ष्य दिया। इसपर भगवान् शिव प्रकट हो गये और उन्होंने असत्यभाषिणी केतकीपर क्रुद्ध होकर उसे सदाके लिये त्याग दिया। तब ब्रह्माजीने भी लज्जित होकर भगवान् विष्णुको नमस्कार किया। उसी दिनसे भगवान् शंकरकी पूजामें केतकी पुष्पके चढ़ानेका निषेध हो गया।

ऋषि बोले—हे राजन्! यह माया इतनी प्रबल है कि यह ज्ञानियोंको भी मोहमें डाल देती है। स्वयं देवाधिदेव लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु भी इस महामायासे अछूते नहीं हैं। जब देवता या मनुष्य इनकी स्तुति करते हैं, तब प्राणियोंके दु:खका नाश करनेके लिये वे भगवती जगदम्बा प्रकट होती हैं। वे भगवती दैवके अथवा कालके अधीन नहीं हैं। वे स्वयं जगत्का सृजन, पालन और संहार करती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तो निमित्तमात्र हैं। उन्होंने सरस्वती, लक्ष्मी तथा पार्वतीके रूपमें उन्हें अपनी शक्तियाँ प्रदान की हैं।

इस प्रकार देवीका माहात्म्य-वर्णन करनेके बाद ऋषिने उनके पूजन आदिकी विधि बताकर भगवतीकी आराधना करनेकी प्रेरणा दी। राजा सुरथ और वैश्य समाधि दोनोंने मुनिकी प्रेरणासे भगवतीका आराधन किया, जिससे प्रसन्न होकर भगवतीने प्रकट होकर उन्हें इच्छित वरदान दिया।

राजा सुरथ एवं समाधि वैश्यको वरदान—राजा सुरथने अपना राज्य प्राप्त करनेका वरदान माँगा, जिसके फलस्वरूप वे दस हजार वर्षोंतक भूमण्डलका शासन करके सावर्णिमनु हुए। समाधि वैश्यने मोक्ष देनेवाले दिव्य ज्ञानकी प्राप्तिका वरदान माँगा, जिसके फलस्वरूप वे ज्ञान प्राप्तकर जीवन्मुक्त हो गये। इस प्रकार पंचम स्कन्धकी कथा पूर्ण हुई।

षष्ठ स्कन्ध

वृत्रासुरके वधकी कथा—षष्ठ स्कन्धके प्रारम्भमें राजा जनमेजयने व्यासजीसे यह प्रश्न किया कि इन्द्रने भगवान् विष्णुकी सहायता लेकर वृत्रासुरको छलपूर्वक क्यों मारा? व्यासजीने विस्तारपूर्वक इस कथाका वर्णन किया। देवताओंमें श्रेष्ठ त्वष्टा नामके एक प्रजापति थे, जो महान् तपस्वी और देवताओंका कार्य करनेमें अतिकुशल थे। उन्होंने इन्द्रसे द्वेषके कारण तीन मस्तकोंसे सम्पन्न एक पुत्र उत्पन्न किया, जिसे 'त्रिशिरा' कहते हैं। वह एक मुखसे वेदाध्ययन करता था, दूसरे मुखसे मधुपान करता था और तीसरे मुखसे सब दिशाओंका निरीक्षण करता था। वह त्रिशिरा भोगका त्याग करके संयमी और धर्मपरायण तपस्वी होकर अत्यन्त कठोर तप करने लगा। उसके तपको देखकर इन्द्र भयभीत हो गये। उन्होंने तपभंग करनेके लिये अप्सराओंको भेजा, परंतु उसमें सफलता न मिलनेपर उन्होंने स्वयं जाकर अपने तीव्रगामी आयुध वज्रसे उसका वध कर दिया।

अपने पुत्रके वधका समाचार सुनकर त्वष्टा अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और उन्होंने अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंसे अग्निमें हवनकर एक तेजोमय प्रकाशमान पुरुषको प्रकट किया। त्वष्टाने अपने इस पुत्रका नाम 'वृत्रासुर' रखा और इसे इन्द्रके वधके लिये प्रेरित किया। वृत्रासुरने इन्द्रपर आक्रमणकर उन्हें पराजितकर उनके गजराज ऐरावतको छीन लिया। यद्यपि त्वष्टा इससे प्रसन्न हो गये, परंतु उन्होंने इन्द्रको मारनेके लिये अपनी शक्तिका संचय करनेकी दृष्टिसे ब्रह्माजीके प्रसन्नार्थ वृत्रको तपस्या करनेकी प्रेरणा की। वृत्रासुरने अपनी तपस्यासे ब्रह्माजीको प्रसन्नकर समस्त अस्त्र-शस्त्रोंसे अवध्यताका वरदान प्राप्तकर स्वर्गलोकपर आक्रमणकर वहाँ अपना आधिपत्य कर लिया। इन्द्रसहित सभी देवगण चिन्ताग्रस्त हो गये और वे ब्रह्मा तथा शिवजीके साथ भगवान् विष्णुके पास गये और उनसे अपनी रक्षाकी प्रार्थना की। भगवान् विष्णुने वृत्रासुरकी बलवत्ताको समझते हुए देवताओंको किसी प्रकार उससे मित्रता—सन्धि करने और विश्वासमें लेकर बादमें उसे मारनेकी योजना बतायी। इसके साथ ही महामाया भगवतीके प्रसन्नार्थ आराधना करनेके लिये भी कहा; क्योंकि भगवतीकी मायासे मोहित होकर ही वृत्रासुर सुगमतापूर्वक मारा जा सकेगा।

देवताओंने आराधनाकर भगवतीको प्रसन्न किया और वरदान प्राप्त किया। तदनन्तर इन्द्रने वृत्रासुरसे सन्धिकर उसे विश्वासमें लेकर छलपूर्वक उसका वध कर दिया।

इन्द्रको शापप्राप्ति—उधर त्वष्टाको जब अपने पुत्र वृत्रासुरके छलपूर्वक वधकी जानकारी हुई तो उन्होंने इन्द्रको दारुण कष्ट प्राप्त होनेका शाप दे दिया, इन्द्रको ब्रह्महत्या लग
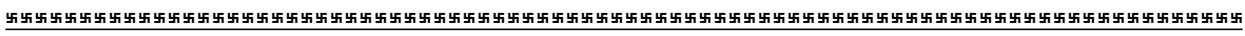
गयी और वे इन्द्रपदसे च्युत हो गये। इन्द्र उस ब्रह्महत्यासे भयभीत होकर मानसरोवरमें स्थित एक कमलनालमें प्रविष्ट हो गये। स्वर्गके इन्द्ररहित हो जानेसे अनेक उपद्रव होने लगे, अनावृष्टिके कारण पृथ्वी भी वैभवशून्य हो गयी। देवताओं और मुनियोंने इस प्रकारकी अराजकता देखकर राजर्षि नहुषको इन्द्र बना दिया।

राजा नहुषकी कथा—नहुष धर्मात्मा थे, पर राजसीवृत्ति और स्वर्गके सुखोंका उपभोग करते हुए वे इन्द्राणीके प्रति विषयासक्त हो गये। इन्द्राणी इन्द्रकी अनुपस्थितिसे वैसे ही दु:खी थी, इस नयी विपत्तिके आ जानेपर उसने देवगुरु बृहस्पतिकी शरण ली। बृहस्पतिके परामर्शसे शचीने भगवती जगदम्बाकी आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर भगवतीने इन्द्राणीको दर्शन दिया और अपनी एक दूतीके साथ शचीको मानसरोवर भेजकर इन्द्रके दर्शन करा दिये।

शचीने इन्द्रको अपनी विपत्तिसे अवगत कराया। इसपर इन्द्रने अपनी पत्नी इन्द्राणीको यह परामर्श दिया कि तुम नहुषसे जाकर एकान्तमें कहना कि आप ऋषियोंद्वारा वहन किये जानेवाले दिव्य वाहनसे मेरे पास आयें, ऐसा होनेपर मैं प्रेमपूर्वक आपके वशमें हो जाऊँगी। शचीने ऐसा ही किया।

उधर भगवतीने नहुषकी बुद्धिको मोहित कर दिया, जिससे उस पापबुद्धिने इन्द्राणीकी प्राप्तिकी इच्छासे दिव्य मुनियोंको अपनी पालकीका वहन करनेमें लगा दिया। इतना ही नहीं उस मूढ़ राजाने तपस्विश्रेष्ठ महर्षि अगस्तिके सिरका पैरसे स्पर्श करते हुए 'सर्प-सर्प' कहा, जिससे क्रुद्ध होकर उन महामुनिने उसे सर्प होनेका शाप दे दिया। इस प्रकार नहुषके पतनके बाद भगवतीकी कृपासे इन्द्रको पुन: स्वर्गका राज्य प्राप्त हो गया।

राजा जनमेजयने यह आख्यान सुनकर व्यासजीसे पूछा—हे ब्रह्मन्! सौ यज्ञ करनेवाले देवताओंके स्वामी इन्द्रको भी अपने स्थानसे च्युत क्यों होना पड़ा? इस प्रश्नके उत्तरमें व्यासजीने उन्हें कर्मकी गहन गतिके बारेमें बताया।

विविध कर्मोंका निरूपण—शास्त्रोंमें संचित, वर्तमान और प्रारब्धके भेदसे कर्मकी तीन गतियाँ बतलायी गयी हैं। अनेक जन्मोंमें किया गया कर्म संचितकर्म कहा गया है; जो सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकारका होता है। हे राजन्! बहुत समयके संचित शुभ या अशुभकर्म पुण्य या पापके रूपमें अवश्य ही भोगने पड़ते हैं। जीवोंके प्रत्येक जन्ममें संचितकर्म बिना भोग किये करोड़ों कल्पोंमें भी नहीं नष्ट होते। सबके शरीर-धारणका कारण उनका कर्म ही होता है। कर्मके समाप्त हो जानेपर प्राणियोंका जन्म लेना भी समाप्त हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है।

हे राजन्! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व सभी कर्मके वशीभूत हैं। इन सभीको पूर्वकालमें किये शुभ-अशुभ कर्मोंका फल भोगना पड़ता है। देवांशसे उत्पन्न पाण्डव तथा नारायणके अंश श्रीकृष्णको भी यहाँ अनेक प्रकारके कष्ट भोगने पड़े।

युगधर्मके प्रभावसे साधुजनोंकी भी मति मलिन हो जाती है। इसी कारण तुम्हारे धर्मात्मा पिता राजा परीक्षित्ने एक तपस्वीके गलेमें मृत सर्प डाल दिया था। उनकी बुद्धिको कलिने ऐसा करनेके लिये प्रेरित किया था। कलियुगमें सत्यमूलक धर्मका सर्वथा क्षय हो जाता है। सत्ययुगमें सभी वर्णोंके लोग भगवती पराम्बाके पूजनमें आसक्त रहते हैं, त्रेतामें धर्मकी स्थिति सत्ययुगसे कम और द्वापरमें त्रेतासे कम होती है।

चित्तशुद्धिकी महिमा—हे राजन्! पृथ्वीपर अनेक पुण्यदायिनी नदियाँ, तीर्थ, सरोवर, अरण्य और क्षेत्र हैं; पर चित्तकी शुद्धि सबसे प्रधान है। चित्त शुद्ध न होनेसे तीर्थसेवनका कोई फल नहीं होता।

आहारकी शुद्धिसे ही अन्त:करणकी शुद्धि होती है और चित्त शुद्ध होनेपर ही धर्मका प्रकाश होता है। आचारसंकरतासे धर्ममें व्यतिक्रम उत्पन्न होता है और धर्ममें विकृति होनेपर वर्णसंकरता उत्पन्न होती है। इस प्रकार सभी धर्मोंसे हीन कलि-युगमें अपने-अपने वर्णाश्रमधर्मकी चर्चा भी कहीं नहीं सुनायी देती। धर्मज्ञ और श्रेष्ठजन भी अधर्म करने लग जाते हैं।

महर्षि वसिष्ठ और विश्वामित्रकी कथा—पूर्वकालमें पवित्र मानसरोवर तटपर रहते हुए विश्वामित्र और वसिष्ठ-जैसे श्रेष्ठ मुनियोंने दस हजार वर्षोंतक परस्पर युद्ध किया था। उन सत्त्वप्रधान मुनियोंका यह युद्ध उनके क्रोधके वशीभूत हो जानेके कारण हुआ था। सूर्यवंशी राजा हरिश्चन्द्र वसिष्ठजीके यजमान थे। वे वरुणदेवकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ कर रहे थे, जिसमें शुन:शेप नामक एक ब्राह्मणपुत्रको यज्ञीय पशु बनाया गया था। विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रको ऐसा करनेसे रोका, परंतु प्रतिज्ञाबद्ध राजा न माने। अन्तमें विश्वामित्रजीने शुन:शेपसे वरुणमन्त्रका जप कराकर उसकी रक्षा की। विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रके इस व्यवहारसे क्रुद्ध होकर छलपूर्वक उनका राज्य छीन लिया। इससे वसिष्ठजी भी क्रुद्ध हो गये, उन्होंने
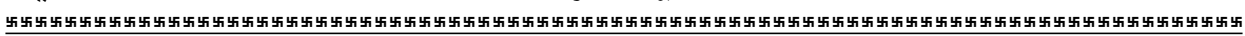
विश्वामित्रको बक हो जानेका तथा विश्वामित्रने वसिष्ठको आडी हो जानेका शाप दिया। इस प्रकार परस्पर शापग्रस्त और युद्धरत देखकर ब्रह्माजीने उन्हें समझाया और शापमुक्त किया।

राजा निमिका वृत्तान्त—वसिष्ठजीने इसी प्रकार क्रोधके वशीभूत होकर पूर्वकालमें राजा निमिको भी शाप दे दिया था। राजा निमि वसिष्ठजीके यजमान थे, वे एक देवीयज्ञ करना चाहते थे और उन्होंने इसे सम्पन्न करानेके लिये गुरु वसिष्ठसे प्रार्थना की, परंतु वसिष्ठजी उस समय इन्द्रका यज्ञ करानेके लिये चले गये और निमिसे बोले कि तुम यज्ञसामग्री एकत्रित करो। राजा निमिने समस्त यज्ञसामग्री एकत्रित करके सैकड़ों वर्षोंतक वसिष्ठजीकी प्रतीक्षाके अनन्तर गौतमऋषिको आचार्य बनाकर अपना यज्ञ प्रारम्भ करा दिया। इससे क्रुद्ध होकर वसिष्ठजीने उन्हें शाप दे दिया कि हे राजन्! तुम्हारा शरीर नष्ट हो जाय। इसपर राजा निमिने भी उन्हें शाप देते हुए कहा कि हे धर्मज्ञ! आपने क्रोधके वशीभूत होकर मुझे अकारण ही शाप दे दिया है। अत: आपकी यह क्रोधयुक्त देह आज ही नष्ट हो जाय। इससे वसिष्ठकी देह नष्ट हो गयी और पुन: उन्होंने मित्रावरुणके तेजसे अगस्तिके साथ एक कुम्भसे जन्म ग्रहण किया। राजा इक्ष्वाकुने उनका पालन-पोषण किया और कालान्तरमें वे उनके वंशके पुरोहित बने।

उधर भगवतीके यज्ञमें दीक्षित राजा निमिकी देहको ऋत्विजोंने मन्त्रशक्तिसे सुरक्षित बनाये रखा और यज्ञकी सम्यक् प्रकारसे पूर्ति हो जानेके बाद देवीके वरदानसे उन्हें निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति हुई और समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें उनका निवास हो गया तथा प्राणियोंके नेत्रोंमें पलक गिरानेकी शक्ति आ गयी। निमिके निवासके कारण ही मनुष्य, पशु तथा पक्षी 'निमिष' (पलक गिरानेवाले) और देवता 'अनिमिष' (पलक न गिरानेवाले) हो गये। इसके अनन्तर मुनियोंने अरणिकाष्ठपर रखकर निमिकी देहका मन्थन किया, जिससे उन्हींके समान एक बालक उत्पन्न हुआ, जो 'मिथि', 'विदेह' और 'जनक' नामसे जाना गया तथा उनके कुलमें उत्पन्न सभी राजा 'विदेह' कहे गये। उन्होंने ही एक सुन्दर नगरीका निर्माण कराया, जो 'मिथिला' नामसे विख्यात है।

इसके अनन्तर राजाने पुन: प्रश्न किया कि वसिष्ठजी श्रेष्ठ ब्राह्मण और राजा निमिके पुरोहित थे तो भी राजा निमिने अपने गुरु और ब्राह्मण वसिष्ठको क्यों शाप दिया और क्षमा क्यों नहीं किया? इसपर व्यासजी बोले—हे राजन्! अजितेन्द्रिय प्राणियोंके लिये क्षमा अत्यन्त दुर्लभ है। कार्य-कारणस्वरूप अहंकारसे ही यह त्रिलोक उत्पन्न हुआ है तो फिर मनुष्य इससे वियुक्त कैसे रह सकता है? ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी तीन गुणोंसे बँधे हुए हैं। परमात्मा और पराशक्ति दोनोंमें सदासे ऐक्य है, उनका स्वरूप अभिन्न है। इस ज्ञानसे मुक्ति हो जाती है।

ज्ञानके दो भेद—ज्ञान भी दो प्रकारका कहा गया है—प्रथम शाब्दिक ज्ञान, जो बुद्धिकी सहायतासे वेद और शास्त्रके अर्थज्ञानद्वारा प्राप्त हो जाता है। दूसरा अनुभव नामक ज्ञान है, जो दुर्लभ होता है। यह ज्ञान तब प्राप्त होता है, जब इसके जानने-वालेका संग हो जाता है। हे भारत! शब्दज्ञानसे कार्यकी सिद्धि नहीं होती, इसलिये अनुभवज्ञान ही विशेष महत्त्वपूर्ण है।

कर्म वही है, जो बन्धन न करे और विद्या वही है, जो मुक्तिके लिये हो। अन्य कर्म तो मात्र परिश्रमके लिये होता है तथा दूसरी विद्या तो मात्र शिल्पसम्बन्धी कौशल है। शील, परोपकार, क्रोधका अभाव, क्षमा, धैर्य और सन्तोष—यह सब विद्याका अत्यन्त उत्तम फल है।

हैहयवंशमें एकवीरकी कथा—हे राजन्! काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार—ये चार शत्रु शरीरमें सदा विद्यमान रहते हैं, इन्हींके प्रभावसे सत्त्वगुणी तपस्वी मुनिगण भी प्रभावित हो जाते हैं, फिर रजोगुणी और तमोगुणी क्षत्रियों तथा अन्य वर्णोंका तो कहना ही क्या? पूर्वकालमें हैहयवंशी क्षत्रियोंने क्रोधके वशीभूत होकर अपने पुरोहितकुलके भृगुवंशी ब्राह्मणोंका संहार कर डाला था। उन पापी हैहयोंने स्त्रियों और शिशुओंको भी नहीं छोड़ा। अन्तमें भगवतीकी कृपासे एक भार्गव-ब्राह्मणीकी जंघासे एक अत्यन्त तेजस्वी बालककी उत्पत्ति हुई। उसके तेजसे वे हैहयवंशी क्षत्रिय दृष्टिविहीन हो गये। पुन: उस बालककी स्तुति करनेपर उन्हें नेत्रज्योति मिली।

राजा जनमेजयने व्यासजीसे हैहयवंशी क्षत्रियोंकी उत्पत्तिके विषयमें पूछा। इसपर व्यासजीने बताया कि भगवान् विष्णु और भगवती लक्ष्मीसे उत्पन्न हैहयसंज्ञक 'एकवीर' नामवाले पुत्रसे इस वंशकी उत्पत्ति हुई। चूँकि अश्वरूपधारी भगवान् विष्णु और वडवारूपधारिणी भगवती लक्ष्मीसे इस पुत्रका जन्म हुआ था, इसीलिये इस वंशका 'हैहय' नाम पड़ा। एकवीरने भगवतीके सिद्धिप्रदायक मन्त्रसे दीक्षित होकर कालकेतु नामक राक्षसका वध किया और उसके द्वारा अपहृत राजा रैभ्यकी कन्या एकावलीसे विवाह किया। उस एकावलीसे उन्हें कृतवीर्य नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। कृतवीर्यका पुत्र कार्तवीर्य हुआ। इस प्रकार हैहयवंशकी वंशबेल वृद्धिको प्राप्त हुई।

इस अद्भुत आख्यानको सुनकर राजा जनमेजयने कहा

कि हे भगवन्! यह तो बड़े ही विस्मयकी बात है कि भगवान् विष्णुको घोड़ेका रूप धारण करना पड़ा, वे पुरुषोत्तम भगवान् तो सदा स्वतन्त्र रहते हैं, उन्हें ऐसा रूप क्यों धारण करना पड़ा?

इसपर व्यासजीने इस कथाका विस्तारसे वर्णन किया तथा कहा—हे राजन्! इस सारहीन जगत्में कभी किसीको सुख नहीं प्राप्त होता है। यह कहकर उन्होंने अपना जीवनवृत्त—जन्म, मातृविछोह, तपस्या, पुत्रप्राप्ति, पुनः पुत्रविछोह तथा धृतराष्ट्र, पाण्डु, विदुर आदिकी उत्पत्तिका वर्णन किया। तत्पश्चात् व्यासजीने पाण्डवोंके जन्म, उनकी शिक्षा-दीक्षा, विवाह, राजसूययज्ञ और वनवासकी कथा सुनायी। इसके अनन्तर व्यासजीने बताया कि पाण्डवों और द्रौपदीको वनवासमें अनेक प्रकारके दु:ख और अपमान सहने पड़े,जिन्हें देखकर ज्ञानवान् होते हुए भी मैं मोहित हो गया। इस प्रकार यह मोह ज्ञानियोंको भी विक्षुब्ध कर देता है। नारद तथा पर्वत-जैसे मुनियोंने इसी मोहके वशीभूत होकर दमयन्ती नामक एक राजकुमारीकी प्राप्तिके लिये एक-दूसरेको शाप दे दिया था। वस्तुतः माया अत्यन्त बलवती है और यह जगत् भी मायाके गुणोंसे ही विरचित है। काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, ममता, अहंकार और मद—इन शक्तिशाली विषयोंको जीतनेमें कोई सक्षम नहीं हो सकता। भगवती महामायाका चरित्र अत्यन्त अद्भुत है, उन्होंने ही स्थावर-जंगमात्मक जगत्को मोहित कर रखा है।

महामायाकी महिमामें देवर्षि नारदकी कथा—एक बार नारदजीके मनमें अहंकारवश यह भ्रान्ति हो गयी कि मैं इन्द्रियों, क्रोध और मायाको जीत लेनेवाला तपस्वी हूँ। इसपर भगवान् विष्णुने उन्हें समझाया कि जब मैं, ब्रह्मा, शिव और सनक आदि मुनि भी मायापर विजय नहीं प्राप्त कर सके तो तुम्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिये। इसपर नारदजीने मायाको देखनेकी इच्छा प्रकट की।

भगवान् विष्णु गरुडपर उन्हें बैठाकर एक दिव्य रमणीय सरोवरके तटपर ले गये और उनसे उसमें स्नान करनेको कहा। उस सरोवरमें जैसे ही नारदजीने डुबकी लगायी, वे एक सुन्दर युवतीके रूपमें परिणत हो गये। सरोवरसे निकलनेपर उन्हें अपने स्वरूपका ज्ञान विस्मृत हो चुका था। भगवान् विष्णु वहाँसे अन्तर्धान हो चुके थे। इतनेमें ही तालध्वज नामक एक राजा उधर आ निकला और सुन्दर स्त्रीके रूपमें नारदजीको देखकर उसने उनसे प्रणय-याचना की। नारदजीको अपना ज्ञान तो विस्मृत हो ही चुका था, स्त्रीके रूपमें उन्हें आश्रयकी आवश्यकता भी थी, अतः वे राजा तालध्वजकी महारानी बन गये। कालान्तरमें वे अनेक पुत्रोंकी माता भी बने। उनके अनेक पौत्र भी हुए। इस प्रकार वे मायाविमोहित हो अपने परिवारमें ही अत्यन्त आसक्त हो गये, उनका दिव्य ज्ञान विस्मृत हो चुका था।

एक बार किसी दूसरे देशके राजाने तालध्वजके राज्यपर आक्रमण कर दिया। भयानक संग्राममें राजा तालध्वजके सभी पुत्र और पौत्र मारे गये। स्त्रीरूपधारी नारदजीने रणभूमिमें जाकर अपने पुत्र-पौत्रोंको मृत देखा तो विलाप करने लगे। इतनेमें वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी भगवान् विष्णुने वहाँ आकर उनको जगत्की नश्वर गति समझाते हुए सरोवरमें स्नानकर मृत पुत्र-पौत्रोंको तिलांजलि देनेको कहा। तब जैसे ही स्त्रीरूपधारी नारदजीने उस सरोवरके जलमें डुबकी लगायी तो वे अपने वास्तविक नारदरूपमें आ गये। भगवान् विष्णु तटपर उनकी वीणा और मृगचर्म लिये खड़े थे। नारदजीको पुनः अपने स्वरूपकी स्मृति हो आयी तो वे विस्मयमें पड़ गये, उन्हें विस्मयान्वित देखकर भगवान् विष्णुने कहा—हे नारद! यहाँ आओ, वहाँ क्या कर रहे हो?

इधर राजा तालध्वज अपनी स्त्रीको सरोवरसे वापस न आया देखकर विलाप करने लगे। तब भगवान् विष्णु तथा नारदने उन्हें प्रबोधित किया। उनकी ज्ञानचर्चासे राजा तालध्वजके मनमें वैराग्यभाव उत्पन्न हो गया। इसके बाद भगवान् विष्णुने नारदजीसे कहा—हे महामते! देखो, यह सारा खेल महामायाजनित है।

श्रीमद्देवीभागवतकी महिमा—इस आख्यानको सुनाकर व्यासजीने राजा जनमेजयसे कहा—हे राजन्! जो माया स्थावर-जंगमरूप समस्त जगत्को अपने वशमें किये हुए है, वह माया भी सदा संविद्रूप परमतत्त्वमें स्थित रहती है। वह उसीके अधीन रहती हुई तथा उसीसे प्रेरित होकर जीवोंमें सदा मोहका संचार करती है। अतः विशिष्ट मायास्वरूपा भगवती जगदम्बाका ध्यान, पूजन, वन्दन तथा जप करना चाहिये। उन्हें छोड़कर अन्य कोई भी देवता उस मायाको दूर करनेमें समर्थ नहीं है। उनकी प्रसन्नताके लिये जो मनुष्य सम्पूर्ण पुराणोंके सारस्वरूप, वेदतुल्य इस श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पाठ अथवा श्रवण करता है, वह ऐश्वर्यसम्पन्न तथा ज्ञानवान् हो जाता है। इस प्रकार देवीके माहात्म्यमें श्रीमद्देवीभागवतके षष्ठ स्कन्धकी कथा पूर्ण हुई। **—राधेश्याम खेमका**